DIRECTORATE OF DISTANCE EDUCATION

KURUKSHETRA UNIVERSITY

KURUKSHETRA—136119

B.C- 206 (i)
B.Com. Part II
(Indian Financial System)

Maximum : 80

Internal Assessment : 20

Time : 3 Hours

Note : The question shall be set in the question paper with at least three questions from each unit. The candidates shall be required to attempt five questions in all, selecting at least one question but not more than two from each unit.

Unit-I Money : Functions, theories and money supply in India. Finance: sources and role of finance in Economic development, Indian Financial system: Components, financial intermediaries, capital and money markets and their instruments. Methods for Note issues in India.

Unit-II Indian Banking System: Definition of bank, commercial banks-importance, functions and problems of Non-performing assets, structure of commercial banking system in India. Regional Rural Banks, cooperative banking in India.

Credit Creation : Process of Credit creation functions and its Limitations.

Development Banks-their features and functions. State Level Development Banks : Objectives, functions and their role. Non Banking Financial Institutions.

Unit-III Reserve Bank of India : Functions, regulation and Control of credit, monetary policy.

Determination and regulation and Interest rates in India. Venture capital, credit rating. Merchant Banking.

Institutional financing in India: UTI, LIC and GIC; Objectives, functions investment policies, and role in Industrial financing.

Mutual Fund : Meaning, Role, Importance, Types, SEBI Guidelines.

Suggested Readings :

1. Chandle, L.V. and Goldfeld, S.M. : The Economic of Money and Banking, Harper and Row, New York.
2. Gupta, S. B. : Monetary Planning of India; S. Chand, New Delhi.
3. Khan, M.Y. : Indian Finacial System- Theory and Practice, Tata Mc Graw Hill, New Delhi.
4. Report on Currency and Finance.
5. Sengupta, A.K. and Agarwal, M.K.: Money Market Operations in India; Skylark Publication, New Delhi.

DIRECTORATE OF DISTANCE EDUCATION
KURUKSHETRA UNIVERSITY
KURUKSHETRA—136119

BC- 206 (i)

Indian Financial System

L.No.	Title	Writer	Pages
1.	....	M.L. Singla	5-34
2.	Financial : Sources and Role in Economic Development.	M.L. Singla	35-44
3.	Indian Financial System: Component, Financial Inter Mediaries, Capital Market and its Instruments.	M.L. Singla	45-62
4.	Money Market and its Instrumrnts; Methods for the Note issue in India.	M.L. Singla	63-76
5.	Indian Financial System	M.L. Singla	77-94
6.	Regional Rural : Banks Co-Operate Banking in India.	M.L. Singla	95-108
7.	Credit Creation process, Functions and its Limitation.	M.L. Singla	109-118
8.	Development : Banks in India	M.L. Singla	119-132
9.	Non-Banking Financial Institutions.	M.L. Singla	133-144
10.	Reserve Bank of India: Functions, Regulations and Control of Credit, Monetary Policy.	M.L. Singla	145-160
11.	Determination and Regulation of Interest Rates in India.	M.L. Singla	161-170
12.	Venture Capital and Credit Rating	M.L. Singla	171-186
13.	Merchant Banking.	M.L. Singla	187-200
14.	Institutional Financing in India.	M.L. Singla	201-214

Paper : BC-206 (i) Indian Financial System — Revised by : M.L. Singla

Lesson No : 1

विषय सामग्री (Contents)

1. परिचय (Introduction)
2. उद्देश्य (Objective)
3. प्रस्तुतीकरण (Presentation)
   - 3.1 वस्तु विनिमय प्रणाली
     - 3.1.1 वस्तु विनिमय की कठिनाइयाँ
   - 3.2 मुद्रा की परिभाषाएँ
     - 3.2.1 (मुद्रा का वर्गीकरण)
     - 3.2.2 मुद्रा के कार्य
   - 3.3 प्राथमिक एवं मुख्य कार्य
     - 3.3.1 गौण व सहायक कार्य
     - 3.3.2 आकस्मिक कार्य
   - 3.4 मुद्रा का महत्व
     - 3.4.1 आर्थिक क्षेत्र में मुद्रा का प्रत्यक्ष महत्व
     - 3.4.2 आर्थिक क्षेत्र में मुद्रा का अप्रत्यक्ष महत्व
     - 3.4.3 अनार्थिक क्षेत्रों में मुद्रा का महत्व
   - 3.5 मुद्रा की हानियाँ या बुराईयाँ
     - 3.5.1 आर्थिक बुराईयाँ
     - 3.5.2 सामाजिक बुराईयाँ
     - 3.5.3 राजनैतिक बुराईयाँ
   - 3.6 विभिन्न आर्थिक प्रणालियों में मुद्रा का महत्व
     - 3.6.1 पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में मुद्रा का महत्व
     - 3.6.2 समाजवादी अर्थव्यवस्था में मुद्रा का महत्व
     - 3.6.3 मिश्रित अर्थव्यवस्था में मुद्रा का महत्व
   - 3.7 मुद्रा के सिद्धान्त
     - 3.7.1 मुद्रा का परिमाण सिद्धान्त
     - 3.7.2 केन्ज का परिमाण सिद्धान्त
   - 3.8 भारत में मुद्रा की पूर्ति
4. सारांश (Summary)
5. प्रस्तावित पुस्तकें (Suggested Readings)
6. नमूने के प्रश्न (Self Assessment Questions)

1. परिचय (Introduction)

आधुनिक युग को मुद्रा युग कहा जा सकता है क्योंकि आज संसार की सभी आर्थिक क्रियाओं का केन्द्र बिन्दु मुद्रा ही है। अर्थात् मनुष्य जीवन की सभी आर्थिक क्रियाएं आज मुद्रा से ही सम्पन्न होती हैं। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि सभी क्षेत्रों जैसे—कृषि, उद्योग एवं व्यापार, विज्ञान एवं प्रोद्यौगिकी, सांस्कृतिक, धार्मिक आदि में होने वाली आर्थिक क्रियाएं मुद्रा के चारों ओर ही घूमती हैं।

''मुद्रा कोई भी वह वस्तु है जो सामान्य रूप से विनिमय के माध्यम मूल्य के माप, धन का संचय तथा ऋणों के भुगतान के रूप में स्वीकार की जाती है।''

साधारणतया नोट, सिक्के तथा चैक मुद्रा कहलाते हैं।

2. उद्देश्य (Objective)

इस पाठ का उद्देश्य आपको मुद्रा के अर्थ एवं परिभाषा, कार्य सिद्धान्त एवं भारत में मुद्रा की पूर्ति इत्यादि से अवगत करवाना है। इस अध्याय में इन सबका वर्णन मुख्यतया निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत दिया गया है।

- वस्तु विनिमय प्रणाली
- मुद्रा की परिभाषाएँ एवं मुद्रा का वर्गीकरण
- मुद्रा के कार्य एवं महत्व
- मुद्रा के सिद्धान्त
- भारत में मुद्रा की पूर्ति

3. प्रस्तुतीकरण (Presentation)

इस अध्याय में मुद्रा के अर्थ, कार्यों, महत्व, सिद्धान्त एवं भारत में मुद्रा की पूर्ति सम्बन्धी उल्लेख किया गया है।

3.1 वस्तु विनिमय प्रणाली

सृष्टि के आरम्भ में मनुष्य की आवश्यकताएँ बहुत कम थीं। वे आत्मनिर्भर थे तथा अपनी आवश्यकताओं की सभी वस्तुओं का उत्पादन स्वयं करते थे। लेकिन जैसे-जैसे उनकी आवश्यकताएँ बढ़ी तो उन्हें पूर्ति के लिए दूसरों पर निर्भर रहना पड़ा तथा वे वस्तुएँ तथा सेवाओं का विनिमय करने लगे। इसे वस्तु विनिमय प्रणाली कहा जाने लगा। अतः वस्तु विनिमय प्रणाली वह प्रणाली है जिसमें वस्तुओं तथा सेवाओं का विनिमय प्रत्यक्ष रूप से वस्तुओं तथा सेवाओं के बदले में किया जाता है।

चैन्डलर के अनुसार ''वस्तु विनिमय प्रणाली में आर्थिक वस्तुओं का प्रत्यक्ष विनिमय किया जाता है।''
वस्तु विनिमय प्रणाली के लाभ—

1. इस प्रणाली में लोग कम उपयोगी वस्तु के बदले अधिक उपयोगिता वाली वस्तु लेकर अपनी सन्तुष्टि को अधिकतम करते हैं।
2. इस प्रणाली में सरल श्रम विभाजन सम्भव होने के कारण अधिक उत्पादन होता है।
3. इस प्रणाली में जितनी पूर्ति की जाती है उतनी ही मांग का निर्माण होता है मांग तथा पूर्ति बराबर होती है, इसलिए अति उत्पादन की समस्या नहीं होती।
4. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए सुविधाजनक होता है।

5. एक सरल अर्थव्यवस्था के लिए जिसमें बाजार का क्षेत्र सीमित होता है। यह एक सरल तथा उपयोगी प्रणाली है।

3.1.1 वस्तु विनिमय की कठिनाइयाँ

प्रो. W.S. Jevons ने अपने लेख में वस्तु विनिमय प्रणाली की निम्नलिखित कठिनाईयों का वर्णन किया।

1. **आवश्यकताओं के दोहरे संयोग की कठिनाई** —वस्तु विनिमय प्रणाली में विनिमय तभी हो सकता है जब आवश्यकताओं का दोहरा संयोग पाया जाये। आवश्यकताओं के दोहरे संयोग से अभिप्राय यह है कि किसी एक व्यक्ति की वस्तु दूसरे की आवश्यकता को तथा दूसरे व्यक्ति की वस्तु पहले की आवश्यकता को पूरा करती है। उदाहरण के लिए आपके पास गेहूँ हैं आपको कपड़े की आवश्यकता है आपको ऐसा व्यक्ति खोजना होगा जिसके पास कपड़ा हो तथा उसे गेहूँ की जरूरत हो। एक सरल अर्थव्यवस्था में जहाँ लोग एक दूसरे को जानते हों शायद ये सम्भव हो लेकिन जटिल अर्थव्यवस्था में ऐसा होना सम्भव नहीं।

2. **मूल्य के एक समान मापक की कठिनाई**—वस्तु विनिमय प्रणाली में मूल्य का कोई समान मापन नहीं होता। जिस कारण वस्तुओं का परस्पर विनिमय का कोई निश्चित अनुपात निर्धारित नहीं किया जा सकता। मान लीजिए, आपको वह व्यक्ति मिल जाता है जो कपड़ा देकर गेहूँ लेने को तैयार है तो यह प्रश्न उत्पन्न होगा कि कितना गेहूँ देकर कितना कपड़ा लिया जाये। इस स्थिति में विनिमय का अनुपात लोग मनमाने ढंग से दोनों पक्षों में मांग की तीव्रता के आधार पर तय करेंगे। यदि आपकी कपड़े की मांग अधिक तीव्र है तो आप कपड़े की एक इकाई के लिए अधिक गेहूँ लेने को तैयार हो जायेंगे। यदि कपड़े की मांग कम तीव्र है तो कम गेहूँ देना पड़ेगा।

3. **कुछ वस्तुओं की अविमान्यता**—ये कठिनाई उन वस्तुओं से सम्बन्धित हैं जिनका विभाजन करने से उपयोगिता नष्ट हो जाती है जैसे—एक घोड़े का मूल्य दो बकरी या दो भेड़ हैं। घोड़े का मालिक घोड़े के बदले एक बकरी और एक भेड़ लेना चाहता है तो उसे आधा घोड़ा बकरी वाले को और आधा घोड़ा भेड़ वाले को देना पड़ेगा। घोड़े के विभाजन से उसकी उपयोगिता नष्ट हो जायेगी।

4. **धन के संचय की कठिनाई**—वस्तुओं के रूप में मूल्य का संचय करना सम्भव नहीं होता क्योंकि 1. अनाज, सब्जियां तथा पशु नाशवान होते हैं। 2. कई वस्तुओं के गुण तथा किस्म समय के साथ नष्ट हो जाते हैं। 3. वस्तुओं तथा पशुओं के संचय में अधिक स्थान की जरूरत होती है। 4. पशुओं को जीवित रखने के लिए धन खर्च करना पड़ता है।

5. **स्थगित भुगतानों में कठिनाई**—स्थगित भुगतानों से अभिप्राय उन भुगतानों से है जिन्हें तत्काल न करके भविष्य के लिये स्थगित कर दिया जाता है। उधार लेन-देन कठिन हो जाता है। 1. वस्तु के गुण के बारे में मतभेद हो सकता है। जैसे—यदि एक जोड़ी बैल एक साल के लिए उधार दिया है तो एक साल बाद वो बूढ़े हो जाते हैं। उनके काम करने की क्षमता कम हो जाती है। उधार देने वाला उन्हीं बैलों को वापिस लेने से इन्कार कर सकता है। 2. भुगतान की जाने वाली वस्तु के मूल्य में परिवर्तन होने के कारण एक पक्ष को हानि उठानी पड़ सकती है।

6. **मूल्य हस्तान्तरण की कठिनाई**—इस प्रणाली में वस्तुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान तक भेजना बहुत कठिन होता है। मान लीजिए एक व्यक्ति अपना मकान बेचकर दूसरी जगह जाना चाहता है तो उसे मकान के बदले अनाज के बदले अनाज व पशु प्राप्त होंगे। पशु बीमार हो सकते हैं। मर भी सकते हैं। ऐसे मूल्य हस्तान्तरण सम्भव नहीं होता।

7. **विशिष्टीकरण की कठिनाई**—वस्तु विनिमय प्रणाली में विशिष्टीकरण तथा जटिल क्रम विभाजन कठिन होता है। अतः शताब्दियों पूर्व वस्तु विनिमय प्रणाली में पाई जाने वाली ऊपरलिखित कठिनाइयों के कारण मुद्रा का जन्म हुआ। मुद्रा के जन्म से सम्बन्धित दो सिद्धान्त हैं।

   1. **मुद्रा का आकस्मिक जन्म सिद्धान्त**—इस सिद्धान्त का प्रतिपादन प्रो. स्पालडिंग ने किया। उनके अनुसार किसी व्यक्ति ने मुद्रा की विशेष रूप से खोज नहीं की। यह तो मनुष्य को संयोगवश ही मिल गई। सभ्यता के विकास के साथ जैसे-जैसे विनिमय प्रणाली का चलन बढ़ता गया नई-नई वस्तुओं को भुगतान के साधन के रूप में स्वीकार करते रहे। अन्ततः मुद्रा अपने वास्तविक रूप में आ गई।

   2. **मुद्रा का विकास सिद्धान्त**—प्रो. क्राउथर ने मुद्रा के विकास सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। इस सिद्धान्त के अनुसार वस्तु विनिमय प्रणाली की कठिनाइयों को दूर करने के लिए मनुष्य ने स्वयं मुद्रा का आविष्कार किया। मुद्रा का वर्तमान रूप निम्नलिखित चरणों में से विकसित हुआ।

   1. **वस्तु मुद्रा**—मानव सभ्यता के प्रारम्भिक काल में वस्तुओं को मुद्रा के रूप में प्रयोग किया जाता था जैसे—1. शिकार युग में तीर कमानों तथा पशुओं की खाल। 2. पशुपालन अवस्था में गाय, भैंस, भेड़ तथा बकरी आदि। 3. कृषि अवस्था में अनाज तथा कृषि यन्त्रों की।

   2. **धातु मुद्रा**—वस्तु मुद्रा की कठिनाइयों को दूर करने के लिए धातु मुद्रा का प्रयोग किया। जैसे—लोहा, तांबा, सोना तथा चांदी की मुद्रा।

   3. **पत्र मुद्रा**—मुद्रा का हस्तान्तरण असुविधाजनक तथा असुरक्षित या चोरी होने का डर बना रहता था। व्यापारी दूर स्थानों पर मुद्रा ले जाने की बजाए अपने शहर के सर्राफ के पास जमा कराके प्रमाणपत्र प्राप्त कर लेते थे और इन प्रमाण पत्रों के आधार पर दूसरे शहरों में मुद्रा प्राप्त कर लेते थे। इन प्रमाण पत्रों के आधार पर पत्र मुद्रा का आविष्कार हुआ।

   4. **साख मुद्रा**—व्यापार के विस्तार के फलस्वरूप बैंकिंग प्रणाली का विकास हुआ। बैंकों ने साख मुद्रा को जन्म दिया। इसके अन्तर्गत विनिमय पत्र, प्रतिज्ञा पत्र तथा ड्राफ्ट आदि शामिल है।

   5. **निकट मुद्रा**—मुद्रा के विकास का पांचवां चरण निकट मुद्रा है। निकट मुद्रा उस मुद्रा को कहते हैं। जो मुद्रा के काफी निकट हैं लेकिन मुद्रा नहीं है। जैसे—ट्रेजरी बिल, बांड्स, बीमा पॉलिसी बैंकों में सावधि जमाएं इत्यादि।

3.2 मुद्रा की परिभाषाएँ (Definitions of Money)

मुद्रा की कोई सर्वमान्य परिभाषा नहीं है। मुद्रा कोई भी वस्तु है जो मुद्रा के कार्य विनिमय का माध्यममूल्य का माप तथा मूल्य का संचय का कार्य करती है। मुद्रा कोई भी वस्तु हो सकती है जो भुगतान के साधन के रूप में स्वीकार की जाती है।

1. परम्परागत दृष्टिकोण से हिक्स के अनुसार कोई भी वस्तु जिसका मुद्रा की तरह प्रयोग किया जाता है। मुद्रा वह है जो मुद्रा का कार्य करती है।

2. शिकगों दृष्टिकोण से—

   Money = Currency + Demand Deposits + Time Deposits

3. गरले तथा शॉ दृष्टिकोण से

Money = Currency + Demand Deposits + Time Deposits + Saving Bank Deposits + Shares Bonds + ...

4. केन्द्रीय बैंकिंग दृष्टिकोण

Money = Currency + Demand Deposits + Time Deposits + Saving Bank Deposits + Shares + Bonds + Securities + Credits from un-organised sector.

3.2.1 मुद्रा का वर्गीकरण

मुद्रा के वर्गीकरण द्वारा यह जाना जा सकता है, कि मुद्रा कितने प्रकार की होती है। इसके मुख्य आधार है।

1. मुद्रा की प्रकृति
2. मुद्रा की वैधानिकता
3. मुद्रा पदार्थ।

1. प्रकृति के आधार पर वर्गीकरण : प्रकृति के आधार पर मुद्रा दो प्रकार की होती है।

(i) **वास्तविक मुद्रा**—वास्तविक मुद्रा वह मुद्रा है जो वास्तव में किसी देश में प्रचलन में होती है। विनिमय का माध्यम होती है जैसे—भारत में रुपया।

(ii) **हिसाब की मुद्रा**—हिसाब की मुद्रा से अभिप्राय उस मुद्रा से है जिसमें सभी प्रकार के हिसाब किताब या लेखे रखे जाते हैं। जैसे—भारत में रुपया हिसाब की मुद्रा है।

2. वैधानिकता के आधार पर : वैधानिकता के आधार पर मुद्रा तीन प्रकार की होती है।

(i) **विधिग्राह्य मुद्रा**—जिस भुगतान के साधन के रूप में देश की सरकार से मान्यता प्राप्त होती है लोगों को कानूनन इसे भुगतान के साधन के रूप में स्वीकार करना पड़ता है। यदि इसको लेने से कोई इन्कार करता है तो उसे दण्डित किया जा सकता है।

(ii) **ऐच्छिक मुद्रा**—ऐच्छिक मुद्रा वह मुद्रा है जो साधारणतया जनता द्वारा स्वीकार तो कर ली जाती है पर कानूनन किसी व्यक्ति को इसके लिए विवश नहीं किया जा सकता। इसे भुगतान के रूप में स्वीकार करना या न करना व्यक्ति की इच्छा पर निर्भर करता है।

(iii) **बाहरी तथा आन्तरिक मुद्रा**—उद्‌गम के आधार पर मुद्रा दो प्रकार की होती है—

(a) **बाहरी मुद्रा**—उस परिसम्पत्ति को कहा जाता है जो सरकार वस्तुओं तथा सेवाओं को खरीदने तथा हस्तान्तरण भुगतान के लिए खर्च करती है।

(b) **आन्तरिक मुद्रा**—उस परिसम्पत्ति को कहा जाता है जो निजी क्षेत्र की वित्तीय संस्थाएं प्रतिभूतियाँ आदि खरीदने पर खर्च करती हैं।

3. मुद्रा पदार्थ के आधार पर : मुद्रा का वर्गीकरण उस पदार्थ के आधार पर किया जाता है जिसकी वह बनी होती है। मुद्रा पदार्थ के आधार पर मुद्रा को दो भागों में बांटा जाता है।

1. **धातु मुद्रा** : धातु मुद्रा वह मुद्रा है जो किसी धातु की बनी होती है। यह तीन प्रकार की होती है।

   (a) **प्रामाणिक सिक्के**—प्रामाणिक सिक्के उन सिक्कों को कहा जाता है जिनका अंकित मूल्य तथा आन्तरिक मूल्य बराबर होता है। ये देश का प्रधान सिक्का होता है। हिसाब किताब इसी मुद्रा में रखा जाता है। इन सिक्कों की ढलाई मुफ्त होती है कोई भी चांदी या सोना ले जाकर टकसाल गृह से सिक्के बनवा सकता है।

   (b) **सांकेतिक सिक्के**—सांकेतिक सिक्के उन सिक्कों को कहा जाता है जिनका अंकित मूल्य आन्तरिक मूल्य से ज्यादा होता है। इनकी ढलाई स्वतन्त्र नहीं होती। इनकी पूर्ति सरकारी आदेशानुसार की जाती है ये प्रमुख मुद्रा नहीं होते बल्कि प्रमुख मुद्रा के सहायक के रूप में काम करते हैं। ये केवल निश्चित सीमा तक ही विधिग्राह्य होते हैं।

   (c) **सहायक या गौण सिक्के**—गौण सिक्के वे सिक्के हैं जिनका आन्तरिक मूल्य अंकित मूल्य से काफी कम होता है। ये सिक्के अल्प मूल्य के होते हैं। जैसे—दो पैसे या पांच पैसे इत्यादि। आजकल भारत में जो रुपया प्रचलित है उसके विषय में कहना कठिन है। वह पूर्णतया प्रामाणिक या सांकेतिक सिक्का है, उसमें दोनों के गुण पाये जाते हैं। इसीलिए भारतीय सिक्के को मानक प्रतीक सिक्का कहा जाता है।

2. **पत्र मुद्रा**—पत्र मुद्रा विशेष प्रकार के कागज पर छपा हुआ वचन पत्र होता है जिसमें निर्गमन अधिकारी, केन्द्रीय बैंक या सरकार उसमें लिखित राशि देने की प्रतिज्ञा करता है। पत्र मुद्रा चार प्रकार की होती है।

   i. **प्रतिनिधि पत्र मुद्रा**—जब किसी पत्र मुद्रा के पीछे शत-प्रतिशत सोना या चांदी सुरक्षित रखे जाते हैं। इस प्रकार की पत्र मुद्रा को प्रतिनिधि पत्र मुद्रा कहा जाता है। अतः ये पत्र मुद्रा कोष में रखे सोने चांदी का प्रतिनिधित्व करती है जनता को विश्वास दिलाने के लिए तथा अति निर्गमन के भय को दूर करने के लिए नोटों के पीछे शत-प्रतिशत धातुएं रखी जाती हैं।

   ii. **परिवर्तनशील पत्र मुद्रा**—जब किसी देश में नोट इस प्रकार से जारी किए जायें कि जनता उनको किसी भी समय प्रामाणिक सिक्कों में बदल सके तो इस प्रकार की मुद्रा को परिवर्तनशील पत्र मुद्रा कहा जाता है। इसके पीछे धातुओं का कोष रखा जाता है पर शत-प्रतिशत नहीं। विदेशी भुगतानों के लिए अलग कोष रखा जाता है।

   iii. **अपरिवर्तनशील पत्र मुद्रा**—अपरिवर्तनशील पत्र मुद्रा उस मुद्रा को कहा जाता है जिसके बदले में सरकार किसी भी प्रकार के सोना, चांदी या अन्य धातु देने का आश्वासन नहीं देती है। इस मुद्रा को जारी करने के लिए सरकारी प्रतिभूतियां ट्रेजरी बिल आदि कोष में रखे जाते हैं। ये असीमित रूप में विधिग्राह्य होती है। आजकल सभी देशों में अपरिवर्तनशील पत्र मुद्रा प्रचलन में है।

   iv. **प्रादिष्ट पत्र मुद्रा**—प्रादिष्ट पत्र मुद्रा वह पत्र मुद्रा है जो सरकारी आदेश के कारण प्रचलन में होती है कानूनन इसे किसी भी धातु में परिवर्तित नहीं किया जा सकता। इसे संकटकालीन भी कहा जाता है, क्योंकि इसका निर्गमन संकटकालीन परिस्थितियों में बिना रक्षित कोष रखे केवल सरकारी आदेश पर जारी किया जाता है। जैसे ही संकटकाल समाप्त होता है इस मुद्रा का अस्तित्व भी समाप्त हो जाता है। यह एक असाधारण प्रकार की मुद्रा है।

निकट मुद्रा—निकट मुद्रा उन वस्तुओं को कहते हैं। जिनके द्वारा वस्तुओं तथा सेवाओं को तुरन्त नहीं खरीदा जाता, परन्तु जिन्हें बड़ी आसानी से पत्र मुद्रा में बदला जा सकता है। जिनका मूल्य मुद्रा के रूप में ही प्रकट किया जाता है। निकट मुद्रा को तरल सम्पत्ति भी कहा जाता है। जो सम्पत्तियां तरल होती हैं। परन्तु मुद्रा नहीं होती, उन्हें निकट मुद्रा कहा जाता है। जैसे—

1. **समय जमा**—जो निश्चित समय के लिए जमा की जाती है।
2. **विनिमय पत्र**—वे साख पत्र हैं जिनमें उधार लेने वाले को एक निश्चित समय जैसे 90 दिन बाद रुपया ब्याज सहित वापिस करने का आदेश दिया जाता है।
3. **ट्रेजरी बिल**—वे साख पत्र जो सरकार को अल्पकाल के लिए ऋण देने के फलस्वरूप प्राप्त होते हैं।
4. **बाण्ड्स**—जो साख पत्र दीर्घकालीन ऋण के लिए दिये जाते हैं। इन पर सरकार तथा फर्म दोनों रुपया उधार लेते हैं। फर्मों तथा उद्योगों के बाण्ड्स को डिबेंचर कहा जाता है।
5. **शेयर**—कम्पनियों के हिस्सों को शेयर कहा जाता है। आवश्यकतानुसार इन्हें भी शेयर बाजार में आसानी से बेचा जाता है।
6. **जीवन बीमा पॉलिसी तथा यूनिट्स :** LIC पॉलिसी की साख पर आवश्यकतानुसार बीमा कम्पनियों के रुपया उधार लिया जा सकता है। UTI द्वारा जारी किये गए यूनिट्स को भी सरलता से मुद्रा बाजार में बदला जा सकता है।

संक्षेप में निकट मुद्रा धन का वह भाग है जो मुद्रा के बहुत निकट है। इसमें मुद्रा की सभी विशेषताएं पायी जाती हैं। परन्तु फिर भी मुद्रा नहीं है। लेकिन यह शीघ्रता से बिना किसी पूंजीगत हानि के मुद्रा में बदली जा सकती है। इनका आर्थिक क्रियाओं पर काफी प्रभाव पड़ता है।

3.3 मुद्रा के कार्य (Functions of Money)

आधुनिक युग मौद्रिक युग है प्रत्येक अर्थव्यवस्था में मुद्रा इतने कार्य करती है कि कोई भी आर्थिक व्यवहार मुद्रा के बिना नहीं हो सकता। मैकोलन ने ठीक ही कहा है "मुद्रा लोगों पर जादू कर देती है। वे इसके लिए दुखी होते हैं। इसे प्राप्त करने के लिए कड़ी मेहनत करते हैं। लोग मुद्रा के लिए सब कुछ करने को तैयार होंगे और मुद्रा लोगों के लिये सब कुछ करेगी।" प्रो. किनले ने मुद्रा के कार्यों को तीन भागों में बांटा है।

3.3.1 प्राथमिक तथा मुख्य कार्य

3.3.2 गौण व सहायक कार्य

3.3.3 आकस्मिक कार्य

3.3.1 प्राथमिक कार्य (Primary Functions)

इस वर्ग में वे कार्य आते हैं जो हर देश में प्रत्येक काल में मुद्रा के द्वारा किये जाते हैं।

1. **विनिमय का माध्यम**—यह मुद्रा का सबसे महत्वपूर्ण कार्य है इसका अर्थ है कि एक व्यक्ति मुद्रा के रूप में अपनी वस्तुओं को बेचता है तथा दूसरी वस्तुओं को खरीदता है। मुद्रा क्रय तथा विक्रय दोनों में ही एक मध्यस्थ का कार्य करती है। इसके फलस्वरूप विनिमय का कार्य सरल व सुगम

हो गया है तथा समय व परिश्रम की बहुत बचत होती है। मुद्रा के बदले में अपनी वस्तु बेच सकता है तथा मुद्रा के द्वारा अन्य कोई भी वस्तु किसी भी समय तथा किसी भी स्थान पर खरीद सकता है तथा उचित निर्णय ले सकता है। बहुपक्षीय व्यापार कर सकता है। मुद्रा लोगों को आर्थिक स्वतन्त्रता प्रदान करती है।

2. **मूल्य का मापदण्ड**—दूसरा महत्वपूर्ण कार्य वस्तुओं तथा सेवाओं का मूल्य मापना है। मुद्रा लेखे की इकाई के रूप में मूल्य का मापदण्ड करती है लेखे की इकाई से अभिप्राय है कि मुद्रा के रूप में हर वस्तु तथा सेवा का मूल्य मापा जाता है। जब हम यह कहते हैं कि आलू 5 रुपये किलो है। तो हम आलू का मूल्य मुद्रा के रूप में मापते हैं। अत: मुद्रा के द्वारा सभी वस्तुओं तथा सेवाओं के मूल्य को मापा जा सकता है।

3.3.2 गौण कार्य (Secondary Functions)

इस वर्ग में हम उन कार्यों को शामिल करते हैं जो प्राथमिक कार्यों के सहायक हैं। जैसे-जैसे अर्थव्यवस्था विकसित होती है इन कार्यों का महत्व बढ़ता जाता है।

1. **स्थगित भुगतानों का मान**—जिन लेन-देनों का भुगतान तत्काल न करके भविष्य के लिए स्थगित कर दिया गया है उन्हें स्थगित भुगतान कहा जाता है। ऋणों के भुगतान को भी स्थगित भुगतान कहते हैं। मुद्रा के कारण स्थगित भुगतान तथा उधार लेन-देन की प्रक्रिया काफी आसान हो गई है। जब हम किसी से ऋण लेते हैं। तो मूलधन और ब्याज दोनों का भुगतान करना पड़ता है। इसे वस्तुओं के रूप में लेन-देन करना एक कठिन कार्य है। मान लीजिए आपने किसी व्यक्ति से गेहूँ के रूप में ऋण लिया है। जब आप ऋण वापिस करेंगे तो उसी क्वालिटी का गेहूँ देना सम्भव नहीं होगा। अत: हमें एक ऐसे माध्यम की जरूरत पड़ती है, जिसके द्वारा ऋण तथा ब्याज का भुगतान सुविधापूर्ण हो सके तथा यह कार्य मुद्रा ने सरल बनाया क्योंकि इसे लोग आसानी से स्वीकार करते हैं। टिकाऊ है तथा मूल्य स्थिर रहता है।

2. **मूल्य का संचय**—वस्तुओं के रूप में मूल्य का संचय करना कठिन होता था। मूल्य के संचय का अभिप्राय है, वस्तुओं तथा सेवाओं के लिए तुरन्त खर्च करने का विचार नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी आय का कुछ भाग भविष्य के लिए बचाता है। इसे ही मूल्य का संचय कहा जाता है। मुद्रा के रूप में मूल्य का संचय आसान होता है, क्योंकि मुद्रा को सभी लोग स्वीकार कर लेते हैं। मूल्य लगभग स्थिर रहता है। बचत के लिए कम जगह की जरूरत पड़ती है। मूल्य का संचय बाण्ड्स, प्रतिज्ञापत्र, मकान, दुकान किसी भी रूप में किया जा सकता है। केन्ज ने मुद्रा के इस कार्य को सबसे ज्यादा महत्व दिया है।

3. **मूल्य का हस्तान्तरण**—मुद्रा के कारण मूल्य का हस्तान्तरण सुविधाजनक बन गया है। आज के इस युग में लोगों की जरूरतें बढ़ गई हैं। इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए दूर-दूर से वस्तुएं खरीदी जाती है। मुद्रा में तरलता तथा स्वीकृति का गुण होने के कारण एक स्थान से दूसरे स्थान पर हस्तान्तरण सम्भव है कोई भी व्यक्ति एक स्थान से अपनी सम्पत्ति बेचकर दूसरे स्थान पर आसानी से जा सकता है। मुद्रा के कारण पूंजी की गतिशीलता में सहायता मिलती है।

3.3.3 आकस्मिक कार्य

जो कार्य आर्थिक विकास के साथ-साथ बढ़ते जाते हैं। उन्हें आकस्मिक कार्य कहा जाता है।

1. **राष्ट्रीय आय का वितरण**—मुद्रा के प्रचलन के पश्चात् राष्ट्रीय आय की गणना तथा राष्ट्रीय आय का वितरण दोनों कार्य काफी सरल हो गये हैं। अब प्रत्येक उत्पादन के साधन को उसके

कार्य का उचित भाग मुद्रा के रूप में मिल जाता है। अतः मूल्य का मापक मुद्रा होने के कारण राष्ट्रीय आय का अनुमान लगाना आसान हुआ है तथा मुद्रा द्वारा लगान, मजदूरी, लाभ तथा ब्याज के रूप में राष्ट्रीय आय का वितरण किया जाता है।

2. **अधिकतम सन्तुष्टि**—मुद्रा के रूप में धन खर्च कर एक उपभोक्ता अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त कर सकता है तथा उत्पादक अधिकतम लाभ प्राप्त कर सकता है। मुद्रा के द्वारा एक उपभोक्ता किसी वस्तु से प्राप्त होने वाली सीमान्त उपयोगिता को बराबर करके अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त कर सकता है तथा एक उत्पादक मुद्रा के द्वारा साधनों का इस अनुपात में प्रयोग करता है कि सभी साधनों से प्राप्त होने वाली सीमान्त उत्पादकता बराबर हो जाए।

3. **साख का आधार**—मुद्रा के बिना साख निर्माण संभव नहीं, आजकल साख सभी देशों के आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। विभिन्न साख पत्रों का आधार मुद्रा ही है।

4. **निर्णय का वाहक**—मुद्रा हमारे निर्णय के वाहक के रूप में भी कार्य करती है यानि मुद्रा के रूप में संचय धन को हम हमारी जरूरतों के हिसाब से खर्च कर सकते हैं। जैसे—अपने रंगीन टी. वी. खरीदने के लिए धन का संचय किया है। लेकिन आपको बीमारी के लिए धन की आवश्यकता पड़ती है तो आप टी.वी. के स्थान पर संचित धन को बीमारी पर खर्च कर सकते हैं। अतः मुद्रा हमारे निर्णय का वाहक है।

5. **शोधन क्षमता की गारंटी**—मुद्रा किसी व्यक्ति या संस्था के पास उसकी शोधन क्षमता की गारंटी है। जब कोई व्यक्ति या फर्म मुद्रा के रूप में अपने दायित्वों का भुगतान नहीं कर पाती तो उसे दिवालिया घोषित कर दिया जाता है। चाहे उसकी परिसम्पत्तियाँ उसके दायित्वों से ज्यादा हों। इसलिए उसे अपनी शोधन क्षमता की गारण्टी के लिए मुद्रा के रूप में कुछ न कुछ धन अवश्य जमा रखना पड़ता है।

6. **पूंजी की तरलता में वृद्धि**—मुद्रा में सामान्य स्वीकृति का गुण होने के कारण यह पूंजी को तरल बनाये रखती है। हम मकान, दुकान में भुगतान लेने से इन्कार कर सकते हैं। लेकिन मुद्रा के रूप में नहीं। केन्ज के अनुसार लोग तीन उद्देश्यों के लिए मुद्रा की मांग करते हैं—(i) क्रय-विक्रय उद्देश्य (ii) सावधानी उद्देश्य तथा (iii) सट्टा उद्देश्य।

प्राथमिक तथा गौण कार्यों को अगत्यामक कार्य कहा जाता है। जबकि आकस्मिक कार्य अर्थव्यवस्था में गति तथा वेग उत्पन्न करते हैं। उन्हें गत्यात्मक कार्य कहा जाता है।

3.4 मुद्रा का महत्व (Importance of Money)

मुद्रा इतनी सार्थक व महत्वपूर्ण हो गयी है कि मुद्रा के कार्यों तथा दुष्कार्यों का अध्ययन अर्थशास्त्र का प्रमुख अंश बन गया है। मुद्रा के महत्व की व्याख्या तीन भागों में की जा सकती है।

3.4.1 आर्थिक क्षेत्र में मुद्रा का प्रत्यक्ष महत्व।

3.4.2 आर्थिक क्षेत्र में मुद्रा का अप्रत्यक्ष महत्व।

3.4.3 आर्थिक क्षेत्रों में मुद्रा का महत्व।

3.4.1 आर्थिक क्षेत्र में मुद्रा का महत्व

अर्थशास्त्र के प्रत्येक क्षेत्र में मुद्रा एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, मुद्रा वह धुरी है जिसके चारों ओर सम्पूर्ण विज्ञान चक्कर लगाती है।

i. **उपभोग क्षेत्र में महत्व**—एक उपभोक्ता को आय मुद्रा के रूप में प्राप्त होती है जिसे वह अपनी इच्छानुसार खर्च कर सकता है। मुद्रा की सहायता से उपभोक्ता अपनी आय को समसीमान्त उपयोगिता के नियम के अनुसार व्यय करके अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त कर सकता है। मुद्रा के कारण ही आजकल उपभोक्ता को बाजार का राजा कहा जाता है।

ii. **उत्पादन के क्षेत्रों में महत्व**—मुद्रा का उत्पादन क्षेत्र में भी काफी महत्व है प्रत्येक उत्पादक उसी वस्तु का उत्पादन करना चाहेगा जिससे लाभ अधिकतम प्राप्त हो। मुद्रा के कारण बड़े पैमाने का उत्पादन सम्भव हो सका है। श्रमविभाजन तथा विशिष्टीकरण द्वारा बड़े पैमाने पर वस्तुओं तथा सेवाओं का उत्पादन होता है।

iii. **विनिमय के क्षेत्र में उत्पादन**—वस्तु विनिमय प्रणाली के दोषों को दूर करके विनिमय की प्रक्रिया सरल हो गई है। मुद्रा मुल्य संयन्त्र का आधार है। मुद्रा के रूप में आय तथा लागत का अनुमान लगाया जाता है। मुद्रा की सहायता से भावी सौदा सम्भव हो सका है। साख निर्माण जो मुद्रा पर आधारित है उसने विनिमय को बढ़ावा दिया है।

iv. **व्यापार के क्षेत्र में महत्व**—मुद्रा के कारण राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में वृद्धि हुई है। मुद्रा से पूर्व व्यापार का क्षेत्र सीमित था। मुद्रा के आविष्कार ने बड़े पैमाने पर उत्पादन सफल बनाया है। उत्पादन की अधिक मात्रा को बेचने के लिये बाजार का विस्तार आवश्यक है। अतः मुद्रा के कारण व्यापार बढ़ा है।

v **वितरण के क्षेत्र में महत्व**—मुद्रा के रूप में राष्ट्रीय आय में से उत्पादन के साधनों को उनका हिस्सा आसानी से दिया जाता है। मुद्रा के प्रचलन के पश्चात् प्रत्येक उत्पादन के साधन को उसका हिस्सा न्यायनुसार दिया जाता है। मुद्रा न्यायानुकूल वितरण में सहायक हुई है।

vi. **राजस्व के क्षेत्र में**—एक कल्याणकारी राज्य में राजस्व काफी महत्वपूर्ण होता है। सार्वजनिक आय के मुख्य साधन कर सार्वजनिक ऋण तथा घाटे की वित्त व्यवस्था है जो मुद्रा के रूप में प्राप्त किये जाते हैं। सार्वजनिक व्यय के द्वारा अधिकतम सामाजिक कल्याण के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए मुद्रा का प्रयोग किया जाता है।

vii. **पूंजी निर्माण**—मुद्रा के कारण बचत तथा निवेश करना सम्भव हो गया है। बचत को निवेश करके पूंजी निर्माण किया जाता है।

3.4.2 आर्थिक क्षेत्र में मुद्रा का परोक्ष महत्व

परोक्ष रूप से मुद्रा ने व्यक्ति के जीवन को काफी प्रभावित किया है—

1. **वस्तुविनिमय से छुटकारा**—वस्तु विनिमय प्रणाली में जो कठिनाईयां पाई जाती थीं मुद्रा ने हमें उनसे छुटकारा दिलाया है। लोगों को आर्थिक स्वतन्त्रता दिलाई है। बाजार का विस्तार हुआ है। परस्पर निर्भरता बढ़ी है। जिससे आर्थिक कुशलता में वृद्धि हुई है।

2. **केन्द्रीय समस्याओं का समाधान**—मुद्रा के कारण केन्द्रीय आर्थिक समस्याओं जैसे क्या पैदा करना है, कैसे पैदा करना उत्पादन किनके लिए करना है इन सब का उचित समाधान सम्भव हो गया है। मुद्रा के कारण देश वस्तुओं तथा सेवाओं का प्रवाह निरन्तर चलता है।

3. **साख का आधार**—आधुनिक व्यापार साख पर निर्भर करता है। मुद्रा के अभाव में साख निर्माण असम्भव था। मुद्रा में स्थायित्व का गुण होने के कारण बैंक जमाओं के आधार पर साख निर्माण सम्भव हुआ।

4. **पूंजी की गतिशीलता में वृद्धि**—मुद्रा के अभाव में पूंजी को एक स्थान से दूसरे स्थान पर एक उद्योग से दूसरे उद्योग में जाना कठिन था। मुद्रा ने पूंजी को गतिशीलता प्रदान की है। जिस पूंजी की उत्पादकता बढ़ती है, देश में उत्पादन अधिक होता है।

5. **सामाजिक कल्याण का मापक**—आधुनिक युग में प्रत्येक देश की सरकार का मुख्य लक्ष्य अधिकतम सामाजिक कल्याण करना है। मुद्रा की सहायता से यह मापना सम्भव हो गया है कि किसी देश की सरकार सामाजिक सुविधाओं पर कितना खर्च करती है।

6. **आर्थिक विकास की सीमाओं का आधार**—प्रो. रोस्टव द्वारा प्रतिपादित विकास की विभिन्न अवस्थाओं का उदय मुद्रा के कारण सम्भव हुआ है। पिछले दो सौ सालों में तीव्र गति से होने वाली तकनीकी प्रगति, जटिल श्रम विभाजन के आधार पर उत्पादन का संगठन आदि मुद्रा के कुशलतम् उपयोग है।

3.4.3 अनार्थिक क्षेत्र में मुद्रा का महत्व

मुद्रा का प्रभाव केवल आर्थिक क्षेत्र में सीमित नहीं है। मुद्रा ने सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्रों में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

सामाजिक क्षेत्र में—मुद्रा के कारण लोगों को सामाजिक स्वतन्त्रता प्राप्त हुई हैं। लोगों के आत्म-सम्मान में वृद्धि हुई है। मुद्रा के प्रचलन के पश्चात् ही पूंजीवाद का उदय हुआ है जिसने लोगों को अपना व्यवसायी चुनने की स्वतन्त्रता दी है।

राजनैतिक क्षेत्र में—मुद्रा के प्रचलन के बाद सरकार ने लोगों से मुद्रा के रूप में कर इकट्ठा करना शुरू किया। कर देने से जनता में ये चेतना जागृत हुई कि सरकार करों के रूप में इकट्ठे धन का क्या कर रही है। मुद्रा राजनैतिक स्वतन्त्रता की शक्तियों को बल प्रदान करती है। राजनैतिक चेतना को जन्म देती है। मुद्रा के द्वारा ही सरकार लोगों को सुविधाएं देकर कल्याणकारी कार्य करती है।

कला के क्षेत्र में—कला के मूल्यांकन के मापदण्ड का कार्य भी मुद्रा के द्वारा किया जाता है। लोग तथा राज्य मुद्रा के रूप में ही कलाकारों को प्रोत्साहन देते हैं। एक कलाकार को कला का मूल्यांकन इस तथ्य के आधार पर किया जाता है कि उसे अपनी कलाकृतियों से कितनी आय होती है। संक्षेप में बर्नाड शाह के शब्दों में ''मुद्रा का अभाव सब बुराईयों की जड़ है।''

3.5 मुद्रा की हानियां बुराइयां

मुद्रा की अधिकता संसार की आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक अस्थिरताओं और जटिलताओं के लिए काफी सीमा तक उत्तरदायी है। मुद्रा एक अच्छा सेवक है। लेकिन बुरा स्वामी है। जब तक मुद्रा नौकर के रूप में नियमित रहती है। वह समाज तथा व्यक्तियों को महत्वपूर्ण सेवाएं प्रदान करती है। लेकिन जब मुद्रा स्वामी बन जाती है उस पर उचित नियन्त्रण नहीं रहता तो अनेक समस्याओं तथा कठिनाइयों का कारण बन जाती है।

3.5.1 आर्थिक बुराइयाँ

1. **मुद्रा स्फीति**—मुद्रा के कारण मुद्रा के मूल्य में स्थिरता नहीं रहती है। जब कीमतों में लगातार बहुत अधिक वृद्धि होती जाती है तो इसे मुद्रा स्फीति कहते हैं। इसका माध्यम वर्ग तथा गरीबों पर बुरा प्रभाव पड़ता है। जब कीमतें लगातार कम होती रहती है तो इसे मुद्रा विस्फीति कहा जाता है। इसके कारण उत्पादन तथा रोजगार पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

2. **व्यापार चक्र**—मुद्रा व्यापार चक्रों को जन्म देती है। व्यापारिक उतार-चढ़ाव का एक मुख्य कारण मुद्रा ही है। व्यापारिक उतार-चढ़ाव बचत तथा निवेश सम्बन्धी निर्णयों में असन्तुलन का परिणाम होता है। बचत निवेश का सम्बन्ध मुद्रा से है।

3. **आर्थिक हानि**—मुद्रा के कारण ऋण आसानी से मिल जाता है। आवश्यकता न होते हुए भी लोग ऋण लेते हैं और सारी उम्र ऋणों के बोझ तले दबे रहते हैं। जैसे—भारतीय किसान के लिए प्रसिद्ध है कि ऋण में जन्म लेता है ऋण में जीवन चलाता है ऋण में ही मर जाता है।

4. **धन का असमान वितरण**—आय और धन के असमान वितरण के कारण कुछ लोगों के हाथ में धन का केन्द्रीयकरण हो जाता है तथा एकाधिकारी प्रवृत्तियों में वृद्धि हो जाती है। मुद्रा वर्ग संघर्ष को जन्म देती है। समाज धनी और निर्धन वर्ग में बंट जाता है। धनी वर्ग निर्धन वर्ग का शोषण करता है।

5. **काले धन की समस्या**—मुद्रा के फलस्वरूप ही काले धन की समस्या उत्पन्न होती है। मुद्रा के रूप में लोग करों की चोरी करते हैं और इससे काले धन की समस्या बढ़ती है। काले धन की उपस्थिति सरकार की मौद्रिक तथा राजस्व सम्बन्धी नीतियों को असफल करती है।

3.5.2 सामाजिक बुराईयाँ

1. **भौतिकवाद को प्रोत्साहन**—मुद्रा के विकास के कारण भौतिकवादी प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन मिला है। आजकल मुद्रा का प्रभाव इतना बढ़ गया है कि प्रेम, विश्वास तथा दोस्ती जैसे गुणों की पहचान पैसे से होती है। जिसके पास पैसा है सब उससे मित्रता करना चाहते हैं जिसके पास धन सम्पत्ति नहीं है उस व्यक्ति के गुण भी दोष बन जाते हैं। कोई उससे मित्रता नहीं करता।

2. **शोषण की प्रवृत्ति**—आज प्रत्येक व्यक्ति धन कमाना चाहता है चाहे उचित या अनुचित तरीके से। पैसा कमाने में उसे दूसरों का शोषण करने में भी कोई बुराई नजर नहीं आती।

3. **अनैतिक प्रवृत्तियों में वृद्धि**—मुद्रा के लिए लोगों ने अपने नैतिक मूल्यों की भी बलि दे दी है। चोरबजारी, ठगी, बेईमानी इत्यादि बुराइयाँ रुपये के कारण ही पैदा हुई है।

3.5.3 राजनैतिक बुराइयाँ

राजनैतिक दोषों का भी मुख्य कारण मुद्रा है। भारत की राजनीति में दल बदलने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मुद्रा के कारण ही मिला है। धन के लालच में लोग अपने विचार बदल लेते हैं। जर्मनी में मुद्रा स्फीति के कारण ही हिटलर जैसे तानाशाह का जर्मनी के राजनैतिक मंच पर उदय हुआ था। हिटलर को मुद्रा स्फीति का दत्तक पुत्र कहा जाता था।

संक्षेप में मुद्रा एक आवश्यक बुराई है। मुद्रा का उचित उपयोग जहाँ आर्थिक विकास की आधारशिला है। वही मुद्रा का अनुचित प्रयोग मनुष्य के जीवन के लिए सबसे बड़ा अभिशाप बन जाती है। इसके लिए आवश्यक है कि मुद्रा को नियमित किया जाए।

3.6 विभिन्न आर्थिक प्रणालियों में मुद्रा का महत्व

विश्व में तीन प्रकार की आर्थिक प्रणालियाँ प्रचलित है—i. पूंजीवाद ii. समाजवाद iii. मिश्रित अर्थव्यवस्था। तीनों प्रणालियों में मुद्रा का निम्नलिखित महत्व है।

3.6.1 पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में मुद्रा का महत्व

पूंजीवाद से अभिप्राय उत्पादन की उस प्रणाली से जिसमें उत्पादन के साधनों पर निजी क्षेत्र का स्वामित्व पाया जाता हो। लोगों को निजी सम्पत्ति रखने की स्वतन्त्रता है। उत्पादन लाभ प्राप्ति के उद्देश्य से किया जाता है। उपभोक्ताओं को इच्छानुसार उपभोग करने की स्वतन्त्रता है। सरकार आर्थिक क्रियाओं में हस्तक्षेप नहीं करती। पूंजीवादी अर्थव्यवस्था का जन्म तथा विकास मुद्रा के कारण सम्भव हुआ है। पूंजीवाद में मुद्रा का महत्व निम्नलिखित तत्वों से पता चलता है।

1. **पूंजी का संचय**—पूंजीवादी अर्थव्यवस्था का विकास का आधार पूंजी का संचय है। मुद्रा के रूप में संचय करने के लिए लोग स्वतन्त्र होते हैं। इसका उपयोग वो उत्पादन क्षमता बढ़ाने में, व्यापार का विस्तार करने में तथा निवेश करके अधिक आय प्राप्त करने में करते हैं। कोई भी पूंजीवादी अर्थव्यवस्था बिना पूंजी के विकसित नहीं हो सकती।

2. **कीमत संयंत्र**—पूंजीवादी अर्थव्यवस्था कीमत संयंत्र पर आधारित होती है। कीमत संयंत्र मुद्रा के माध्यम द्वारा ही कार्य करता है। इसका अभिप्राय है कि अर्थव्यवस्था में कीमतें बिना किसी बाहरी हस्तक्षेप के मांग तथा पूर्ति द्वारा निर्धारित होती है। पूंजीवाद अर्थव्यवस्था में केन्द्रीय समस्याओं का समाधान कीमत संयंत्र की सहायता से ही किया जाता है।

3. **व्यवसाय की स्वतन्त्रता**—पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में लोगों को अपना व्यवसाय चुनने की स्वतन्त्रता होती है। वे अपनी इच्छा अनुसार कोई व्यवसाय आरम्भ कर सकते हैं। व्यवसाय उनकी निजी सम्पत्ति होती है।

4. **उपभोक्ता की सार्वभौमिकता**—पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में उपभोक्ता को बाजार का राजा माना जाता है। उसकी इच्छानुसार उन्हीं वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है जिसे वो पसन्द करता है। उपभोक्ता मुद्रा दे कर अपनी मनपसन्द वस्तुएँ खरीद सकता है।

5. **लाभ का उद्देश्य**—पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाओं में उत्पादन लाभ प्राप्ति के उद्देश्य के लिए किया जाता है। उत्पादक का उद्देश्य लाभ को अधिकतम करना होता है। लाभ अधिकतम तभी हो सकता है जब लागतें कम हों, मांग तथा पूर्ति में सन्तुलन हो और ये लक्ष्य तभी प्राप्त होंगे जब वस्तुओं की लागत, कीमत, मांग तथा पूर्ति आदि को मुद्रा के रूप में व्यक्त किया जाये। मुद्रा के अभाव में इनकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। लाभ अधिक होने के फलस्वरूप मुद्रा में निजी सम्पत्ति का भी अधिक संचय किया जा सकेगा।

3.6.2 समाजवादी या नियोजित अर्थव्यवस्था में मुद्रा का महत्व

समाजवादी अर्थव्यवस्था से अभिप्राय उस आर्थिक प्रणाली से है जिसमें उत्पादन के साधनों पर सरकार का नियन्त्रण रहता है। सभी क्षेत्रों का संचालन सरकारी कर्मचारियों के द्वारा किया जाता है। उत्पादन का उद्देश्य सामाजिक कल्याण होता है। केन्द्रीय समस्याओं का समाधान केन्द्रीय नियोजन अधिकारी के द्वारा किया जाता है। इसमें लोगों को इच्छानुसार न व्यवसाय चुनने की स्वतन्त्रता होती है न कि उपभोग की। समाजवादी अर्थव्यवस्था में मुद्रा के सम्बन्ध में दो मत हैं।

1. **मुद्रा अनावश्यक है**—कार्ल मार्क्स मुद्रा को पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की वस्तु मानते थे। उनका विश्वास था कि पूंजीवादी की समाप्ति पर मुद्रा भी स्वयं समाप्त हो जायेगी। श्रमिकों के शोषण का कारण मुद्रा है। मुद्रा वर्ग भेद, वर्ग संघर्ष तथा शोषण को जन्म देती है। मुद्रा को समाप्त कर देना चाहिए। पूंजीपतियों को अतिरिक्त मूल्य मुद्रा के कारण ही प्राप्त होता है। अत: एक समाजवादी

अर्थव्यवस्था में मुद्रा का कोई महत्व नहीं। समाजवादी अर्थव्यवस्थाएं मुद्रा के बगैर चल सकती है तथा समाज को मुद्रा की बुराइयों से छुटकारा मिल सकता है।

2. **मुद्रा आवश्यक है**—जब समाजवादियों को मुद्रा के उन्मूलन में असफलता प्राप्त हुई तो उन्हें मानना पड़ा कि समाजवादी अर्थव्यवस्था का संचालन मुद्रा के वगैर नहीं हो सकता। मुद्रा के वगैर समाजवादी अर्थव्यवस्थाएं उचित रूप से कार्य नहीं कर सकतीं। इन देशों में मुद्रा का महत्व निम्न तत्वों से प्रकट होता है।

   i. **पूंजी निर्माण**—समाजवादी अर्थव्यवस्था में पूंजी प्रधान तकनीकों का प्रयोग कर ऊँचे पैमाने पर उत्पादन कर सकती है। पूंजी प्रधान तकनीक के लिए पूंजी की जरूरत होती है। पूंजी निर्माण के लिए बचत तथा निवेश मुद्रा के रूप में किये जाते हैं। समाजवादी अर्थव्यवस्था में भी पूंजी निर्माण के वही साधन हैं जो एक पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में पाये जाते हैं।

   ii. **आय वितरण**—समाजवादी अर्थव्यवस्था में भी आय का वितरण करने के लिए मुद्रा की जरूरत पड़ती है। मुद्रा के रूप में आय प्राप्त करके उपभोक्ता उसे इच्छानुार खर्च कर सकेंगे।

   iii. **मुद्रा साधनों के बंटवारे के लिए**—समाजवादी अर्थव्यवस्था में एक योजनाधिकारी को उत्पादन के साधनों का विभिन्न परियोजनाओं के लिए बंटवारा करना पड़ता है। इस बंटवारे को उचित ढंग से कुशलतापूर्वक करने के लिए मुद्रा की आवश्यक होती है।

   iv. **विनिमय का माध्यम**—समाजवादी अर्थव्यवस्था में भी उत्पादन तथा लेन–देन के लिए मुद्रा की आवश्यकता होती है। मुद्रा व्यापार को सरल तथा सुविधाजनक बनाती है। अतः समाजवाद में भी मुद्रा का महत्वपूर्ण स्थान है।

   v. **विदेशी व्यापार**—समाजवादी अर्थव्यवस्थाएँ अपना समस्त विदेशी व्यापार वस्तुविनिमय के आधार पर या द्विपक्षीय समझौता के आधार पर ही नहीं कर सकती। उन्हें विदेशी व्यापार के लिए विदेशी मुद्रा की आवश्यकता पड़ती है। अतः हम ये कह सकते हैं कि समाजवादी अर्थव्यवस्था मुद्रा के वगैर नहीं चल सकती। मुद्रा महत्वपूर्ण स्थान रखती है परन्तु समाजवादी अर्थव्यवस्था में मुद्रा का उतना महत्व नहीं होता जितना कि पूंजीवादी में। पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में मुद्रा एक स्वामी तथा साध्य का रूप धारण कर लेती है। जबकि समाजवादी अर्थव्यवस्था में मुद्रा सेवक तथा साधन के रूप में कार्यरत रहती है परन्तु स्वामी का कार्य नहीं करती।

3.6.3 मिश्रित और विकासशील अर्थव्यवस्था में मुद्रा का महत्व

मिश्रित अर्थव्यवस्था से अभिप्राय उस अर्थव्यवस्था से है जिसमें निजी क्षेत्र तथा सार्वजनिक क्षेत्र दोनों मिलकर देश के आर्थिक विकास के लिए प्रयत्नशील होते हैं। निजी क्षेत्र में आर्थिक समस्याओं का समाधान कीमत संयत्र के द्वारा होता है तथा उत्पादन भी लाभ प्राप्ति के उद्देश्य से किया जाता है परन्तु इन पर सरकार का नियन्त्रण रहता है। सरकार इस बात के लिए प्रयत्नशील रहती है कि एकाधिकारी प्रवृत्तियों को रोका जा सके। सार्वजनिक क्षेत्र में उत्पादन का उद्देश्य समाज कल्याण होता है। इसमें मुद्रा का महत्व निम्न तत्वों से प्रकट होता है।

1. **आर्थिक विकास**—मिश्रित अर्थव्यवस्थाएं आर्थिक विकास के लिए अपने साधनों का पूर्ण उपयोग करना चाहती है। मुद्रा साख निर्माण तथा उपयोगिता और कुशलता से वास्तविक साधनों का पूर्ण दोहन कर सकती है। मुद्रा आर्थिक विकास के लिए पूंजी संचय करने तथा जीवन स्तर उठाने में सहायक होती है।

2. **योजनाओं का निर्माण**—मिश्रित अर्थव्यवस्था में योजनाओं के निर्माण में मुद्रा का महत्वपूर्ण योगदान होता है। योजनाधिकारी को यह तय करना पड़ता है कि निश्चित समय में आर्थिक विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने में कितनी मुद्रा की आवश्यकता होगी तथा मुद्रा कौन से साधनों से प्राप्त की जाए।

3. **कीमत स्थिरता**—मिश्रित अर्थव्यवस्था के लिए अपनी आर्थिक योजनाओं के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कीमत स्थिरता आवश्यक है क्योंकि कीमतें बढ़ने से योजनाओं में निर्धारित लक्ष्य पूरा कर पाना कठिन हो जाता है।

4. **विदेशी विनिमय की आवश्यकता**—इन अर्थव्यवस्थाओं के आर्थिक विकास की दर बढ़ाने के लिए विदेशी साधनों पर निर्भर रहना पड़ता है क्योंकि आयातों का भुगतान भी विदेशी मुद्रा में करना पड़ता है। इसके लिए आवश्यक है कि विनिमय दर स्थित रहे। विनिमय दर की स्थिरता के लिए मुद्रा पर उचित नियन्त्रण रखना पड़ता है।

5. **देश के साधनों का पूर्ण प्रयोग**—विकासशील देश को अपने अमौद्रिक क्षेत्र को मौद्रिक क्षेत्र बनाने के लिए मुद्रा की आवश्यकता होती है। देश में साधन तो पाये जाते हैं लेकिन मुद्रा के अभाव में उन साधनों का पूर्ण उपयोग नहीं हो पाता है। इन देशों की सरकारें कर सार्वजनिक ऋण तथा बचतों से धन प्राप्ति का प्रयास करती है। यदि फिर भी ध्यान की कमी रहती है तो वह घाटे की वित्त व्यवस्था द्वारा पूरी की जाती है। घाटे की वित्त व्यवस्था मुद्रा में ही सम्भव है।

संक्षेप में हर प्रकार की अर्थव्यवस्था के लिए मुद्रा एक महत्वपूर्ण तत्व है। मुद्रा आर्थिक प्रगति का एकमात्र सर्वव्यापक तथा महत्वपूर्ण माध्यम है। मुद्रा की अल्पविकसित अर्थव्यवस्था को विकसित बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका है। समाजवादी अर्थव्यवस्थाएँ भी मुद्रा की उपेक्षा करने में सफल नहीं हुई अन्ततः उन्हें भी मुद्रा के महत्व को स्वीकारना पड़ा।

3.7 मुद्रा के सिद्धान्त (Theories of Money)

मुद्रा के मूल्य से सम्बन्धित सिद्धान्तों को मुद्रा का सिद्धान्त कहा जाता है। मुद्रा के मूल्य से अभिप्राय मुद्रा की क्रयशक्ति से होता है। मुद्रा की एक इकाई के बदले जितनी वस्तुएं तथा सेवाएँ खरीदी जा सकती हैं वह ही उसका मूल्य है। यदि हम मुद्रा की एक इकाई से पैन खरीदते हैं तो एक रुपये का मूल्य एक पैन होगा।

विभिन्न वस्तुओं तथा सेवाओं का मूल्य मुद्रा के रूप में व्यक्त किया जाता है परन्तु मुद्रा का मूल्य मुद्रा के रूप में नहीं बता सकते। इसके लिए हम सामूहिक मूल्य निकाल लेते हैं। जिसमें कुछ ऐसी वस्तुओं तथा सेवाओं को चुनते हैं। जिन्हें हम नित्य प्रतिदिन के जीवन में उपयोग करते हैं। इनका औसत मूल्य निकला लेते हैं। जिसे सामान्य मूल्य स्तर कहा जाता है।

मुद्रा का मूल्य $= \frac{I}{P}, P$ कीमत स्तर।

अतः मुद्रा के मूल्य तथा कीमत स्तर में विपरीत सम्बन्ध होता है जब सामान्य कीमत स्तर घटता है तो मुद्रा का मूल्य बढ़ता है। ऐसा मुद्रा विस्फीति में होता है। जब मूल्य स्तर बढ़ता है तो मुद्रा के मूल्य कम होता है इसे मुद्रा स्फीति कहा जाता है।

मुद्रा के मूल्य निर्धारण के सिद्धान्त :

मुद्रा के मूल्य निर्धारण से सम्वन्धित दो सिद्धान्त हैं—

3.7.1 मुद्रा का परिमाण सिद्धान्त

3.7.2 केन्ज का परिमाण सिद्धान्त

3.7.1 मुद्रा का परिमाण सिद्धान्त :

ये मुद्रा के मूल्य निर्धारण का सबसे पुराना सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त का प्रतिपादन जीन बोडीन ने 1566 में किया था। लेकिन 20वीं सदी में इस सिद्धान्त की विस्तृत व्याख्या इरविंग फिशर, मार्शल तथा राबर्ट्सन आदि अर्थशास्त्रियों ने की थी।

फिशर के अनुसार मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त के अनुसार अन्य बातें स्थिर रहने पर जब चलन में मुद्रा का परिमाण बढ़ता है तो कीमत स्तर भी प्रत्यक्ष अनुपात में बढ़ता है तथा मुद्रा का मूल्य कम हो जाता है।

मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त के दो मुख्य समीकरण हैं :

1. नकद व्यवसाय या फिशर का समीकरण
2. नकद शेष या केम्ब्रिज समीकरण

1. **नकद व्यवसाय या फिशर का समीकरण :** प्रो. इंगशिर फिशर ने 1911 में The Purchasing Power of Money में मुद्रा परिमाण सिद्धान्त के नकद व्यवसाय दृष्टिकोण का प्रतिपादन किया है। फिशर के अनुसार मुद्रा की मांग क्रय-विक्रय उद्देश्य के लिए की जाती है। मुद्रा का मूल्य मुद्रा की मांग तथा पूर्ति के द्वारा निर्धारित किया जाता है। अत: कीमत स्तर वहां निर्धारित होता है जहां मुद्रा की मांग तथा पूर्ति बराबर होते हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार मुद्रा की मांग केवल वर्तमान सौदों की पूर्ति का भुगतान करने के लिए की जाती है।

मुद्रा की मांग = मुद्रा की पूर्ति

$$PT = MV + M^1V^1$$

$$P = \frac{MV + M^1V^1}{T}$$

$$\frac{1}{P} = \frac{T}{MV + M^1V^1}$$

M = प्रचलन में मुद्रा

V = प्रचलन मुद्रा की चलन गति

M^1 = साख मुद्रा

V^1 = साख मुद्रा की चलन गति

P = कीमत स्तर

T = वस्तुओं तथा सेवाओं की कुल मात्रा

$\frac{1}{P}$ = मुद्रा का मूल्य

फिशर के अनुसार मुद्रा की पूर्ति (MV) दो तत्वों पर निर्भर करती है। मुद्रा की मात्रा = करेन्सी + साख मुद्रा।

2. **मुद्रा की चलन गति**—मुद्रा की चलन गति से अभिप्राय मुद्रा की एक इकाई एक वर्ष में कितनी बार विनिमय के माध्यम के रूप में एक व्यक्ति से दूसरे के पास जाती है।

   मुद्रा की मांग (PT)—मुद्रा की मांग इसलिए की जाती है कि मुद्रा द्वारा वस्तुएं तथा सेवाएं खरीदी जा सके। यह व्यापार की मांग तथा कीमत स्तर पर निर्भर करती है।

   फिशर के अनुसार एक निश्चित समयावधि में M^1VV^1 तथा T स्थिर रहते हैं। अतः मुद्रा की मात्रा तथा कीमत स्तर में सीधा तथा आनुपातिक सम्बन्ध पाया जाता है तथा मुद्रा की मात्रा का मुद्रा के मूल्य के साथ विपरीत सम्बन्ध पाया जाता है। इसको एक उदाहरण से स्पष्ट किया जा सकता है।

मान लीजिए :

$M = 100 \;\; V = 8M^1 = 200, \qquad V^1 = 4, \quad T = 400$

$$P = \frac{MV + M^1V^1}{T} = \frac{100 \times 8 + 200 \times 4}{400} = \frac{800 + 800}{400} = \frac{1600}{400} = 4 \text{ रुपये MV}$$

मुद्रा का मूल्य $= \frac{1}{4}$ वस्तु

यदि M की मात्रा दुगुनी कर दी जाए तो M^1 भी उसी अनुपात में बढ़ेगा।

$M = 200.\ V = 8.\ M^1 = 400, \qquad V^1 = 4 \quad T = 400$

$$P = \frac{200 \times 8 + 400 \times 4}{400} = \frac{1600 + 1600}{400} = \frac{3200}{400} = 8 \text{ रुपये प्रति वस्तु}$$

मुद्रा का मूल्य $= \frac{1}{8}$ वस्तु

अतः उपरोक्त उदाहरण से स्पष्ट होता है कि मुद्रा की मात्रा दुगुनी कर देने से कीमत भी दुगुनी हो जाती है तथा मुद्रा का मूल्य आधा रह जाता है।

मुद्रा परिमाण सिद्धान्त की मान्यताएं :

1. करेन्सी तथा बैंक मुद्रा की चलन गति ($V.V^1$) स्थिर रहती है।

2. अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार पाया जाता है।

3. निश्चित समय में व्यापार की मात्रा स्थिर रहती है।
4. बैंक मुद्रा तथा करेन्सी का अनुपात स्थिर रहता है।
5. मुद्रा सक्रिय भूमिका निभाती है।
6. कीमत स्तर एक निष्क्रिय तत्व है।
7. दीर्घकाल की मान्यता पर आधारित है।

फिशर के समीकरण की व्याख्या

उपरोक्त मान्यताओं के आधार पर फिशर के समीकरण से ज्ञात होता है कि कीमत स्तर तथा मुद्रा की मात्रा के साथ प्रत्यक्ष तथा आनुपातिक सम्बन्ध है। मुद्रा की मात्रा तथा मुद्रा के मूल्य में आनुपातिक तथा विपरीत सम्बन्ध है।

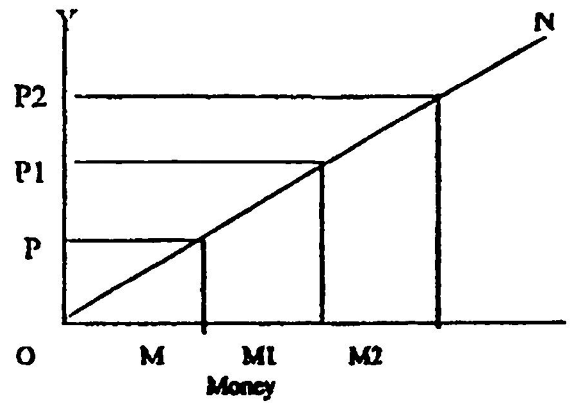

चित्र

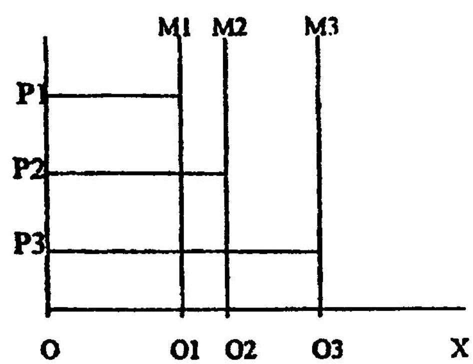

चित्र

चित्र A में OX रेखा पर मुद्रा की मात्रा तथा OY रेखा पर कीमत स्तर लिया गया है। जब मुद्रा की मात्रा OM है तो कीमत स्तर OP है। मुद्रा की मात्रा OM_1 होने पर कीमत OP_1 उसी अनुपात में बढ़ जाती है। जब मुद्रा की मात्रा OM_2 हो जाती है तो कीमतें भी उसी अनुपात में बढ़कर OP_2 हो जाती है। अत: ON रेखा कीमत स्तर तथा मुद्रा की मात्रा के आनुपातिक सम्बन्ध को दर्शाती है। चित्र (B) में OY पर मुद्रा का मूल्य तथा OX पर मुद्रा की मात्रा है। जब मुद्रा की मात्रा OM है तो मुद्रा का मूल्य 1/P है मुद्रा की मांग बढ़कर OM_1 हो जाती है तो मुद्रा का मूल्य कम होकर 1 P_1 हो जाता है। अत: VV वक्र मुद्रा के मूल्य तथा मुद्रा की मात्रा के आनुपातिक विपरीत सम्बन्ध को दर्शाता है।

आलोचनाएँ

लार्ड केन्ज तथा केन्जोतर अर्थशास्त्रियों के फिशर के समीकरण की निम्न आलोचनाएं की।

1. **अवास्तविक धारणायें**—फिशर का सिद्धान्त इस अवास्तविक मान्यता पर आधारित है कि कीमत पर सिर्फ मुद्रा की मात्रा का प्रभाव पड़ता है अन्य तत्व $V.V^1T$ स्थिर रहते हैं। इनका कीमत स्तर पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। जबकि वास्तविक जीवन में ये तत्व स्थिर नहीं रहते।

2. **चर स्वतन्त्र नहीं है**—फिशर की यह मान्यता भी गलत है कि परिमाण सिद्धान्त के विभिन्न चर $M.M^1.V.V^1$ तथा T एक-दूसरे से स्वतन्त्र हैं। परन्तु वास्तविक जीवन में ये चर स्वतन्त्र नहीं है।

3. **पूर्ति को अधिक महत्व**—आलोचकों के अनुसार फिशर ने मुद्रा की मांग की उपेक्षा की तथा पूर्ति को अधिक महत्व दिया है। उनके अनुसार केवल मुद्रा की पूर्ति में परिवर्तन कीमत स्तर को प्रभावित करता है।

4. **कीमत निष्क्रिय तत्व नहीं**—वास्तव में कीमतें सक्रिय तत्व हैं कीमतों में परिवर्तन का व्यापार पर प्रभाव पड़ता है। लाभ पर प्रभाव पड़ता है कीमतें कम होने पर मुद्रा की मात्रा कम होती है। कीमतें बढ़ने पर मुद्रा की मात्रा बढ़ जाती है।

5. **पूर्ण रोजगार**—फिशर का समीकरण पूर्ण रोजगार की मान्यता पर आधारित है। जो कि काल्पनिक स्थिति है अपूर्ण रोजगार ही वास्तव में पाया जाता है।

6. **व्यापार चक्रों की व्याख्या**—फिशर का समीकरण व्यापार चक्रों की व्याख्या करने में असफल रहा है। इस सिद्धान्त से यह ज्ञात नहीं होता कि मन्दी के दिनों में मुद्रा की मात्रा बढ़ने से कीमतें क्यों नहीं बढ़ती। तथा तेजी के दिनों में मुद्रा की मात्रा में वृद्धि किए वगैर कीमतें तेजी से क्यों बढ़ती हैं।

7. **ब्याज की दर के प्रभाव की अवहेलना**—केन्ज के अनुसार अगर मुद्रा की मात्रा में कोई परिवर्तन होता है तो वह सबसे पहले ब्याज की दर को प्रभावित करता है। लेकिन फिशर ने मुद्रा की मांग तथा कीमत स्तर में सम्बन्ध स्थापित करके ब्याज की दर के प्रभाव की अवहेलना की है।

8. **चलन गति को मापना**—फिशर के समीकरण में मुद्रा की चलनगति को मापना कठिन है। मुद्रा की एक इकाई निश्चित समय में कितने हाथ बदलती है। यह पता लगना सम्भव नहीं है और अल्पकाल में तो चलन गति को स्थिर मान सकते हैं लेकिन दीर्घकाल में चलनगति में परिवर्तन आयेगा ही।

9. **कीमत स्तर कुल आय का परिणाम होता है मुद्रा की मात्रा का नहीं**—आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार मुद्रा का मूल्य कुल आय तथा कुल व्यय द्वारा निर्धारित होता है यह केवल मुद्रा की मात्रा पर निर्भर नहीं करता।

10. **अगत्यात्मक सिद्धान्त**—इस सिद्धान्त के अध्ययन से केवल यह ज्ञात होता है कि मुद्रा की मात्रा में परिवर्तन होने से तुरन्त कीमत स्तर में परिवर्तन हो जायेगा। परन्तु इससे यह नहीं पता चलता कि मुद्रा की मात्रा में परिवर्तन होने में कितना समय लगेगा? परिवर्तन की प्रक्रिया क्या होगी? अत: यह सिद्धान्त गत्यात्मक तत्वों की कोई व्याख्या नहीं करता।

नकद शेष समीकरण या कैम्ब्रिज समीकरण

नकद शेष समीकरण का प्रतिपादन कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के अर्थशास्त्रियों जैसे मार्शल, पीगू रॉबर्ट्सन ने किया है। इसलिए इसे कैम्ब्रिज समीकरण कहते हैं। केम्ब्रिज समीकरण कहते हैं। कैम्ब्रिज समीकरण के अनुसार मुद्रा का मूल्य मुद्रा की पूर्ति तथा मांग द्वारा निर्धारित होता है। समय के एक निश्चित बिन्दु पर मुद्रा की पूर्ति स्थिर रहती है। इसलिए मुद्रा की मांग में होने वाले परिवर्तनों का मूल्य स्तर पर अधिक प्रभाव पड़ता है। कैम्ब्रिज समीकरण मुद्रा की पूर्ति की बजाए मुद्रा की मांग को अधिक महत्व देता है। इसलिए इसे मुद्रा को मांग सिद्धान्त कहा जाता है।

मुद्रा की पूर्ति

मुद्रा की पूर्ति से अभिप्राय समय की एक निश्चित बिन्दु पर जनता के पास उपलब्ध नोटों, सिक्कों तथा बैंकों में मांग जमा का जोड़ है।

मुद्रा की पूर्ति = नोट + सिक्के + मांग जमा

अतः समय के निश्चित बिन्दु पर मुद्रा की पूर्ति स्थिर रहती है। समय बिन्दु पर चलनगति का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

मुद्रा की मांग

इस समीकरण के अनुसार लोग मुद्रा की मांग नकदी के लिए करते हैं। इस समीकरण के अनुसार मुद्रा केवल विनिमय के माध्यम का कार्य ही नहीं करती बल्कि मूल्य के संचय के रूप में भी कार्य करती हैं। नकद शेष से अभिप्राय वास्तविक राष्ट्रीय आय के उस भाग से है जिसे लोग नकद रूप में अपने पास रखना चाहते हैं। दो उद्देश्यों के लिए लोग नकदी की मांग करते हैं क्रय-विक्रय उद्देश्य तथा सावधानी उद्देश्य। लोग मुद्रा को नकद रूप में इसलिए रखना चाहते हैं क्योंकि आय तथा व्यय में समयावधि का अन्तर पाया जाता है। जब आय की प्राप्ति नहीं होती तो लोग नकद कोषों में से खर्च करते हैं। नकद शेष विचारधारा से सम्बन्धित कुछ महत्वपूर्ण समीकरण इस प्रकार है।

1. मार्शल का समीकरण—

$M = KY + K_1A$

M = मुद्रा की मात्रा, Y = मौद्रिक आय, A = सम्पत्ति, K_1 सम्पत्ति का वह भाग जो लोग नकद रूप में रखना चाहते हैं। मार्शल के अनुयायियों ने सम्पत्ति का वह भाग जिसे लोग नकदी के रूप में रखना चाहते हैं। महत्वहीन मानकर छोड़ दिया है।

उनके अनुसार,

$M = KY$

2. पीगू का समीकरण—

पीगू ने निम्नलिखित समीकरण दिया

$$P = \frac{KR}{M}$$

M = मुद्रा की कुल मात्रा, R = कुल वास्तविक आय : वास्तविक आय का वह भाग जिसे लोग नकदी के रूप में अपने पास रखते है। P = मुद्रा का मूल्य।

लोग अपनी सारी मुद्रा करेन्सी के रूप में नहीं रखते। कुछ भाग को बैंकों में भी रखा जाता है। अतः पीगू ने अपने समीकरण में कुछ सुधार किया।

$$P = \frac{RK}{M}[c + n(1-c)]$$ या

$$M = \frac{RK}{P}[c + n(1-c)]$$

c = जनता के पास नकदी

1 – c = बैंक जमा

n = बैंक जमा का वह भाग जो CRR के रूप में रखा जाता है। इसे हम एक उदाहरण से समझ सकते हैं।

$$K = \frac{1}{4} c = \frac{1}{2} n = \frac{1}{10} R = 2000 \quad \text{tonn}$$

M = 550 P = ?

$$P = \frac{RK}{M}[c + n(1-c)]$$

$$P = \frac{\frac{1}{2} \times 2000}{550}\left[\frac{1}{2} + \frac{1}{10}\left(1 - \frac{1}{2}\right)\right]$$

$$P = \frac{500}{550}\left[\frac{1}{2} + \frac{1}{20}\right]$$

$$P = \frac{10}{11} \times \frac{11}{20} = \frac{1}{2}$$ क्विंटल चावल

अतः मुद्रा की एक इकाई का मूल्य 1/2 क्विंटल चावल है। यदि हमें मुद्रा की मात्रा ज्ञात करनी हो तोः

$$M = \frac{\frac{1}{4} \times 2000}{\frac{1}{2}}\left[\frac{1}{2} + \frac{1}{10} \times \frac{1}{2}\right]$$

$$M =^{1}\left[\frac{1}{2} + \frac{1}{10} \times \frac{1}{2}\right]$$

$$M = 500 \times \frac{2}{1}\left[\frac{1}{2} + \frac{1}{20}\right]$$

$$M = 1000 \times \frac{11}{20} = 550$$ रुपये

पीगू के अनुसार R, K, b तथा n को स्थिर मान लिया जाये तो मुद्रा की पूर्ति में होने वाले परिवर्तन के कारण मुद्रा के मूल्य में आनुपातिक परिवर्तन होगा इसे निम्न रेखाचित्र द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। निम्नचित्र में OX पर मुद्रा की मात्रा तथा OY अक्ष पर मुद्रा का मूल्य लिया गया है। D मुद्रा का मांग वक्र है $Q_1M_1.Q_2M_2$ तथा Q_3M_3 मुद्रा के पूर्ति वक्र है। ये वक्र इस मान्यता पर बनाये गए हैं कि मुद्रा की पूर्ति समय के निश्चित बिन्दु पर स्थिर रहती है।

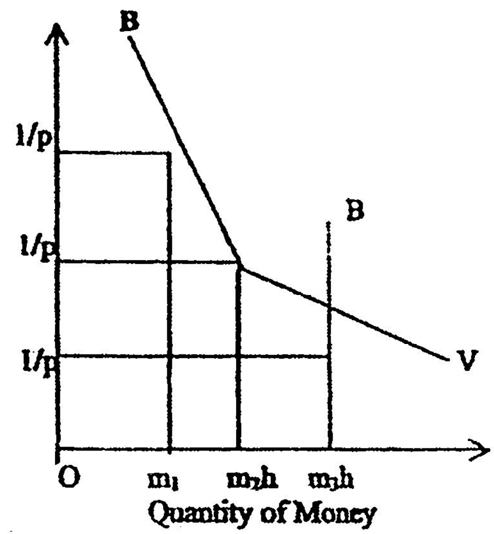

चित्र—Quantity of Money

इस रेखाचित्र नं. 2 से ज्ञात होता है कि जब मुद्रा की पूर्ति OM_1 से बढ़कर OM_2 हो जाती है तो मुद्रा का मूल्य OP_1 से कम होकर OP_2 उसी अनुपात में कम हो जाता है। पूर्ति OM_3 हो जाती है तो मुद्रा का मूल्य OP_3 हो जाता है। अतः मुद्रा के मूल्य में उसी अनुपात में कमी हुई है जिस अनुपात में मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि हुई है।

आलोचनाएँ

A.C.L. Dey के अनुसार यद्यपि कैम्ब्रिज दृष्टिकोण फिशर दृष्टिकेण पर बड़ी उपलब्धि है लेकिन फिर भी यह एक पर्याप्त सिद्धान्त नहीं है। इसकी कई आधारों पर आलोचना की जा सकती है।

1. **अवास्तविक मान्यताएं**—इस सिद्धान्त में कुछ तत्वों को जैसे R.K.C. तथा n को स्थिर माना गया है जबकि वास्तविक जीवन में ये सभी तत्व स्थिर नहीं रहते।

2. **सट्टा उद्देश्य**—कैम्ब्रिज समीकरण के अनुसार मुद्रा की मांग सिर्फ दो उद्देश्यों के लिए की जाती है। क्रय-विक्रय तथा सावधनी उद्देश्य तथा सट्टा उद्देश्य के लिए मुद्रा की मांग की अवहेलना की है।

3. **ब्याज की दर**—कैम्ब्रिज अर्थशास्त्रियों ने भी मुद्रा की मात्रा तथा कीमत में प्रत्यक्ष सम्बन्ध दिखाकर ब्याज की दर पर पड़ने वाले प्रभाव की अवहेलना की है। जब मुद्रा की मात्रा में परिवर्तन होता है तो सबसे पहले ब्याज की दर पर प्रभाव पड़ता जिससे निवेश प्रभावित होता है। निवेश से होने वाले परिवर्तन उत्पादन लागत को प्रभावित करते हैं। तब कीमतें बढ़ती हैं। लेकिन कैम्ब्रिज दृष्टिकोण ने भी ब्याज की दर के प्रभाव की अवहेलना की है।

4. **व्यापार चक्र**—कैम्ब्रिज समीकरण व्यापार चक्रों की व्याख्या करने में असमर्थ रहा है। इस सिद्धान्त से यह नहीं पता चलता है कि अर्थव्यवस्था में तेजी तथा मन्दी की स्थिति क्यों उत्पन्न होती है।

5. **अगत्यात्मक सिद्धान्त**—इस सिद्धान्त में मुद्रा की मांग की लोच इकाई होती है। इसका अभिप्राय यह है कि मुद्रा के मूल्य में उसी अनुपात में परिवर्तन होता है। जिस अनुपात में मुद्रा की मांग में परिवर्तन होता है। मुद्रा की मांग की लोच इकाई हो ऐसा अगत्यात्मक व्यवस्था में तो सम्भव है परन्तु गत्यात्मक अवस्था में नहीं।

6. **अपूर्ण सिद्धान्त**—नकद शेष सिद्धान्त एक अपूर्ण सिद्धान्त है। यह कोषों को प्रभावित करने वाले एक तत्व अर्थात् वर्तमान आयु (R) को महत्व देता है। लेकिन अन्य तत्वों की अवहेलना करता है।

   संक्षेप में कैम्ब्रिज समीकरण में उपरोक्त दोष होते हुए भी यह सिद्धान्त फिशर समीकरण के अधिक विस्तृत तथा वैज्ञानिक व्याख्या है।

3.7.2 केन्द्र का मुद्रा सिद्धान्त

प्रसिद्ध अर्थशास्त्री लार्ड के. एम्. केन्ज ने अपने प्रसिद्ध पुस्तक The General Theory of Employment, Interest and Money (1936) में मुद्रा तथा कीमतों के सम्बन्ध में एक वास्तविक सिद्धान्त प्रस्तुत किया इस सिद्धान्त को मुद्रा परिणाम सिद्धान्त का सुधारा हुआ रूप कहा जाता है। इस सिद्धान्त ने मुद्रा उत्पादन तथा कीमतों में सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न किया है। मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त के अनुसार मुद्रा की मात्रा का तथा कीमत स्तर में प्रत्यक्ष सम्बन्ध पाया जाता है। लेकिन केन्ज के अनुसार मुद्रा की मात्रा में होने वाले परिवर्तनों तथा कीमत स्तर पर अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। केन्ज के अनुसार मुद्रा की मात्रा में वृद्धि होने पर लोगों के नकद शेष बढ़ जाते हैं। वे इस नकदी का तीन प्रकार से प्रयोग करते हैं :

1. संचय करने के लिए।
2. प्लाट तथा मशीनरी खरीदने के लिए।
3. काण्ड्स खरीदने के लिए।

लोग पहले तथा दूसरे विकल्प को पसन्द नहीं करते इसलिए ज्यादातर लोग मुद्रा की पूर्ति में होने वाली वृद्धि को काण्ड्स खरीदने के लिए इस्तेमाल करेंगे। काण्ड्स की कीमतें बढ़ेंगी, ब्याज की दर कम हो जायेगी। निवेश बढ़ेगा तथा आय में वृद्धि होगी, उत्पादन बढ़ेगा तथा पूर्ण रोजगार के पश्चात् उत्पादन बढ़ने के स्थान पर कीमतें बढ़ेंगी।

केन्ज का आधारभूत समीकरण—

1. $Y = E + Q$ — Y = राष्ट्रीय आय
   E = उत्पादन के साधनों का भुगतान
   Q = आकस्मिक लाभ
2. $O = R + C$ — O = कुल उत्पादन
   R = उपभोग वस्तुएं
   C = पूंजीगत वस्तुएं
3. $S = E - PR$
   $PR = E - S$ — S = बचत
   PR = उपभोग व्यय

4. $1 = P_1C$ 		1 = निवेश

P_1C = पूंजीगत वस्तुओं पर व्यय

$$\Pi = \frac{PR + P_1C}{O}$$ 		PR = ES

$$\Pi = \frac{E - S + 1}{O}$$ 		$P_1C = 1$

5. $$\Pi = \frac{E}{O} + \frac{1 - S}{0}$$ 		Π = सामान्य लाभ

इस समीकरण में केन्ज ने कीमत स्तर तथा मुद्रा की मात्रा में कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं दिखाया है। कीमत में दो कारणों से परिवर्तन हो सकते हैं।

1. $\frac{E}{O}$ यह पूर्ण रोजगार में स्थिर रहता है।

2. 1 – S कीमत में परिवर्तन का मुख्य कारण निवेश तथा बचत में पाया जाने वाला अन्तर है। यह अन्तर ब्याज की दर पर निर्भर करता है। ब्याज की दर दो प्रकार की होती है।

1. **ब्याज की प्राकृतिक दर**—यह वह दर है जिस पर पूर्ण रोजगार की स्थिति में निवेश तथा बचत बराबर होते हैं।

2. **ब्याज की बाजार दर**—यह वह दर है जिस पर बाजार में रुपया उधार दिया तथा उधार लिया जाता है। निवेश तथा बचत में अन्तर तीन स्थितियों में होता है।

   1. जब 1 = S 		बाजार दर तथा प्राकृतिक दर बराबर होती है। इसलिए कीमत स्तर स्थिर रहता है।

   2. जब 1 > S 		प्राकृतिक दर बाजार दर से ज्यादा होती है तथा कीमत स्तर में वृद्धि होती है।

   3. जब S > 1 		बाजार दर प्राकृतिक दर से ज्यादा होती है तथा कीमत स्तर में कमी होती है।

मान्यताएं

केन्ज का मुद्रा सिद्धान्त निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है :

1. **उत्पादन के साधनों की पूर्ति पूर्ण तथा लोचदार होती है**—बेरोजगारी की अवस्था में उत्पादन के साधनों की पूर्ति पूर्णतया लोचदार होती है।

2. **पूर्ण रोजगार की अवस्था में साधनों की पूर्ति पूर्णतया बेलोचदार**—जब अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार की स्थिति आ जाती है तो उत्पादन के साधनों की पूर्ति पूर्णतया बेलोचदार हो जाती है।

3. **बेरोजगारी की स्थिति में उत्पादन की पूर्ति की लोच इकाई है**—जब अर्थव्यवस्था में बेरोजगारी होती है मुद्रा की मात्रा में परिवर्तन होने पर उत्पादन में उसी अनुपात में परिवर्तन होता है।

4. **पूर्ण स्थानापन्नता**—उत्पादन के विभिन्न साधन एक-दूसरे के पूर्ण स्थानापन्न होते हैं। यानि कि यदि एक साधन उपलब्ध नहीं है, तो उसकी जगह दूसरे साधन का इस्तेमाल किया जा सकता है। प्रत्येक साधन की क्षमता तथा कुशलता एक समान होती है।

5. **प्रभावपूर्ण मांग**—अपूर्ण रोजगार की स्थिति में मुद्रा की पूर्ति में परिवर्तन प्रभावपूर्ण मांग में आनुपातिक परिवर्तन करते हैं।

6. **समान प्रतिफल का नियम**—समान प्रतिफल के नियम के अन्तर्गत उत्पादन किया जाता है।

केन्ज के सिद्धान्त की व्याख्या :

केन्ज ने मुद्रा सिद्धान्त की व्याख्या दो प्रकार से की है—

1. **मुद्रा की मात्रा तथा कीमत स्तर में अप्रत्यक्ष सम्बन्ध पाया जाता है**—केन्ज के अनुसार मुद्रा की मात्रा तथा कीमत स्तर में प्रत्यक्ष न होकर अप्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है।

Change in Quantity of money	$\rightarrow$ change in rate of	$\rightarrow$ change in
Δ M	interest Δr	investment Δ I
LP is constant	MEC is constant	MPC is constant
Change in Income, Output & Employment $\Delta Y, \Delta Q, \Delta N$	$\rightarrow$ Change in Cost of Production ΔC	$\rightarrow$ Change in Prices ΔP

1. मुद्रा की मात्रा में परिवर्तन होने से अगर तरलता, अधिमान स्थिर रहता है तो ब्याज की दर में परिवर्तन होता है।

2. ब्याज में परिवर्तन होने पर अगर पूंजी की सीमान्त उत्पादकता स्थिर रहती है तो निवेश प्रभावित होता है।

3. ब्याज में परिवर्तन उत्पादन, आय तथा रोजगार को प्रभावित करता है। अगर सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति स्थिर रहती है।

4. इससे उत्पादन लागत प्रभावित होती है।

5. उत्पादन लागत में परिवर्तन कीमतों में परिवर्तन लाता है।

$\Delta M \uparrow \rightarrow \Delta r \downarrow \Delta I \uparrow \rightarrow \Delta Y\ \Delta Q.\ \Delta N. \uparrow \rightarrow \Delta C \uparrow \rightarrow \Delta P \uparrow$

अगर मुद्रा की मात्रा बढ़ती है तो ब्याज की दर कम हो जाती है जिससे निवेश बढ़ता है आय उत्पादन तथा रोजगार में वृद्धि होती है। उत्पादन लागत बढ़ती है तथा कीमतों में वृद्धि होती है। अत: केन्ज के अनुसार मुद्रा की मात्रा तथा कीमत स्तर में अप्रत्यक्ष सम्बन्ध पाया जाता है।

2. **मुद्रा की मात्रा, उत्पादन तथा कीमतें**—लार्ड केन्ज ने मुद्रा सिद्धान्त में मुद्रा, उत्पादन तथा कीमतों में समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न किया है। केन्ज के अनुसार जब तक अर्थव्यवस्था में बेरोजगारी की स्थिति कायम है तब तक मुद्रा वृद्धि उत्पादन तथा रोजगार को बढ़ाती है। पूर्ण रोजगार की स्थिति के पश्चात् प्रत्येक मुद्रा वृद्धि कीमतों में वृद्धि लाती है।

इसे निम्न रेखाचित्र से स्पष्ट किया जाता है।

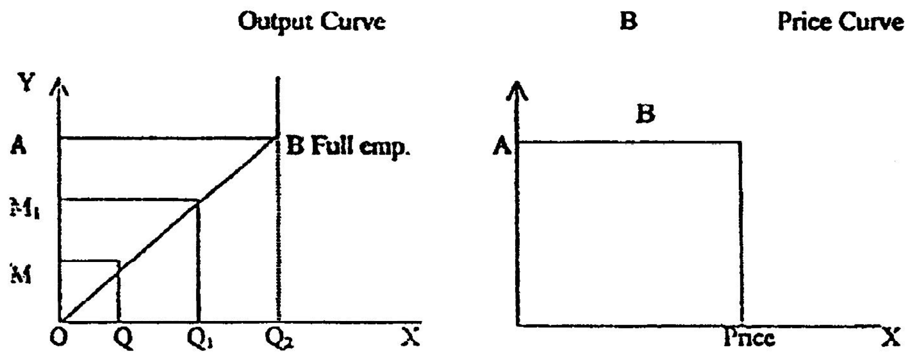

चित्र—3

रेखाचित्र A में OX अक्ष पर उत्पादन तथा OY अक्ष पर मुद्रा की मात्रा है, यह मुद्रा तथा उत्पादन की मात्रा में सम्बन्ध प्रकट करता है जैसे-जैसे मुद्रा O से A तक बढ़ती जाती है उत्पादन भी O से QF तक उसी अनुपात में बढ़ता जाता है। जब मुद्रा की मात्रा OM है तो उत्पादन OQ मुद्रा बढ़कर OM_1 हो जाती है। उत्पादन OQ_1 हो जाता है जब मुद्रा की मात्रा OA है तो पूर्ण रोजगार स्तर पर उत्पादन QF होने लगता है इसके बाद उत्पादन वक्र B बिन्दू के पश्चात् OY अक्ष के सामान्तर हो जाता है। रेखाचित्र B मुद्रा तथा कीमतों में सम्बन्ध दर्शाता है। ये दिखाता है कि जब तक मुद्रा OA से कम है कीमतें तब तक BQF पर स्थिर है। पूर्ण रोजगार स्तर के बाद मुद्रा (OA) बढ़ती है तो उत्पादन में कोई वृद्धि नहीं होती क्योंकि पूर्ण रोजगार स्तर के बाद उत्पादन के साधनों की पूर्ति पूर्णतया बेलोचदार हो जाती है इसलिए उत्पादन नहीं बढ़ता सिर्फ कीमतों में वृद्धि होती है कीमतें उसी अनुपात में बढ़ती हैं। जिस अनुपात में मुद्रा की मात्रा बढ़ती है।

आलोचनाएँ

केन्ज के सिद्धान्त के मुख्य आलोचक डार्न पैटिनकन तथा क्रिडमैन आदि है। इनकी मुख्य आलोचनाएँ निम्न है :

1. **अनिश्चित सम्बन्ध**—इस सिद्धान्त का प्रमुख दोष यह है कि मुद्रा की मात्रा बढ़ने से ब्याज तभी कम होगा अगर तरलता अधिमान स्थिर है। निवेश तभी बढ़ेगा अगर MPC और MEC स्थिर है। इसीलिए इन काल्पनिक सम्बन्धों को सन्देहजनक दृष्टि से देखा जाता है।

2. **अपूर्ण सिद्धान्त**—केन्ज के मुद्रा सिद्धान्त को अपूर्ण इसलिए कहा जाता है कि केन्ज का समीकरण भी कीमतों को प्रभावित करने वाले सभी तत्वों की विवेचना नहीं करता है।

3. **ब्याज की दर को अधिक महत्व**—केन्ज ने अपने मुद्रा सिद्धान्त में ब्याज की दर को अधिक महत्व दिया जब कि General Theory में उन्होंने बताया कि निवेश पर ब्याज की दर के बजाए पूंजी की सीमान्त उत्पादकता का अधिक प्रभाव पड़ता है।

4. **उत्पादन के साधन पूर्ण स्थानापन्न नहीं होते**—केन्ज की वह मान्यता भी वास्तविक नहीं है कि उत्पादन के सभी साधनों में पूर्ण स्थानापन्नता पाई जाती है क्योंकि यदि कोई साधन आवश्यक मात्रा में उपलब्ध नहीं है उसकी जगह दूसरा साधन लगाया जाएगा परन्तु उसकी उत्पादन क्षमता कम होगी इसके फलस्वरूप उत्पादन लागत बढ़ जाएगी तथा पूर्ण रोजगार से पहले ही कीमत स्तर बढ़ जाएगा।

5. **अवास्तविक मान्यता**—केन्ज के मुद्रा सिद्धान्त की यह मान्यता भी सही नहीं है कि पूर्ण रोजगार से पहले प्रत्येक साधन की पूर्ति पूर्णतया लोचदार होती है प्रत्येक उद्योग में कुछ विशिष्ट साधन होते हैं। जिनकी कमी होने पर उत्पादन नहीं किया जा सकता। इसका प्रभाव यह पड़ता है कि पूर्ण रोजगार से पहले कई वस्तुओं का उत्पादन नहीं बढ़ने पाता और कीमतें बढ़ने लगती है।

6. **अगत्यात्मक सिद्धान्त**—इस सिद्धान्त में गत्यात्मक परिवर्तनों को कोई महत्व नहीं दिया गया है वास्तविक जीवन में उत्पादन उपभोग तथा निवेश पर समय के साथ-साथ होने वाले परिवर्तनों का भी प्रभाव पड़ता है।

उपरोक्त दोष होते हुए भी केन्ज का सिद्धान्त अधिक वास्तविक तथा तर्क संगत है केन्ज का सिद्धान्त अल्पकालीन मूल्य निर्धारण पर प्रकाश डालता है तथा मुद्रा का लीन परिमाण सिद्धान्त दीर्घकालीन मूल्य निर्धारण पर प्रकाश डालता है। केन्ज के सिद्धान्त को मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त से अधिक श्रेष्ठ माना जाता है। केन्ज के सिद्धान्त की श्रेष्ठता निम्नलिखित कारणों से सिद्ध होती है।

1. **मौद्रिक तथा मूल्य सिद्धान्त**—केन्ज ने अपने सिद्धान्त में मौद्रिक सिद्धान्त तथा मूल्य के सिद्धान्त का एकीकरण किया है। केन्ज के अनुसार मुद्रा सिद्धान्त तथा उत्पादन सिद्धान्त एक ही प्रकार के कारणों से प्रभावित होते हैं।

2. **अधिक वास्तविक**—मुद्रा का परिमाण सिद्धान्त केवल पूर्ण रोजगार की स्थिति में लागू होता है जो कि एक दुर्लभ स्थिति है। अधिकतर देशों में अल्परोजगार पाया जाता है। केन्ज का सिद्धान्त अल्परोजगार तथा पूर्ण रोजगार दोनों स्थितियों में लागू होता है। अत: यह अधिक वास्तविक सिद्धान्त है।

3. **कारणात्मक क्रियाओं की उचित व्याख्या**—केन्ज ने मुद्रा सिद्धान्त में कारणात्मक क्रियाओं की उचित व्याख्या प्रस्तुत की है। केन्ज ने उन सभी तत्वों को ध्यान में रखा है। जिसके कारण कीमतें बढ़ती है। मुद्रा की मात्रा में वृद्धि ब्याज की दर को कम करती है जिससे निवेश, उत्पादन तथा रोजगार में वृद्धि होती है, उत्पादन लागत बढ़ती है अन्ततः कीमतों में वृद्धि होती है। यह व्याख्या अधिक वैज्ञानिक है।

4. **मौद्रिक सिद्धान्त तथा उत्पादन सिद्धान्त**—लार्ड केन्ज ने मुद्रा तथा उत्पादन सिद्धान्त का एकीकरण किया है। पूर्ण रोजगार से पहले मुद्रा तथा उत्पादन का सम्बन्ध तथा पूर्ण रोजगार के बाद मुद्रा तथा कीमतों में सम्बन्ध स्थापित किया है।

5. **अच्छा पथ प्रदर्शक**—केन्ज का मुद्रा-सिद्धान्त आर्थिक नीतियों के लिए अच्छा पथ प्रदर्शक है। केन्ज के अनुसार मुद्रा में प्रत्येक वृद्धि मुद्रा स्फीति का कारण नहीं होती। मुद्रा स्फीति का भय सिर्फ पूर्ण रोजगार के बाद उत्पन्न होता है। अत: कोई भी देश मन्दी तथा बेरोजगारी से छुटकारा पाने के लिए घाटे की वित्त व्यवस्था को अपना सकता है। साख का विस्तार करके अपनी आर्थिक स्थिति में सुधर ला सकता है। संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि मुद्रा का परिमाण सिद्धान्त की अपेक्षा केन्ज का मुद्रा सिद्धान्त अधिक वास्तविक तथा युक्तिसंगत है। क्योंकि केन्ज ने कीमतों में वृद्धि के वास्तविक कारणों की व्याख्या की है। यह बताया कि जब मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि होती है तो कीमतों पर किस प्रक्रिया के तहत प्रभाव पड़ता है। केन्ज ने मुद्रा के सिद्धान्त में बताया कि मुद्रा की मात्रा में प्रत्येक वृद्धि कीमत वृद्धि का कारण नहीं होती जैसा कि मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त में माना गया है। केवल पूर्ण रोजगार के बाद वाली मुद्रा स्फीति से ही डरना चाहिए क्योंकि यह पूर्ण स्फीति को जन्म देती है तो अल्पविकसित देश अपने देशों में फैली बेरोजगारी की समस्या को दूर करने के लिए एक सीमा तक मुद्रा की पूर्ति को बेधड़क बढ़ा सकते हैं।

केन्ज का मुद्रा सिद्धान्त एक सामान्य सिद्धान्त है क्योंकि यह अपूर्ण रोजगार तथा पूर्ण रोजगार दोनों स्थितियों में लागू किए जा सकते हैं।

3.8 भारत में मुद्रा की पूर्ति (Supply of Money in India)

मुद्रा की पूर्ति से अभिप्राय है कि समय के निश्चित बिन्दु पर चलन में कितनी मुद्रा है। अन्य शब्दों में मुद्रा की पूर्ति से हमारा अभिप्राय उन सभी वस्तुओं की मुद्राओं की मात्रा से है जो देश के अन्दर विनिमय के माध्यम के रूप में प्रचलित होती है। मुद्रा का वह भाग जो विनिमय के माध्यम के रूप में कार्य नहीं करता बल्कि तिजोरियों में बंद रहता है मुद्रा की पूर्ति में शामिल नहीं किया जाता। मुद्रा की पूर्ति की स्टाक व प्रवाह धारणा के रूप में अध्ययन किया जा सकता है। मुद्रा की स्टाक धारणा से अभिप्राय समय के निश्चित बिन्दु पर पाई जाने वाली मुद्रा की पूर्ति से है। मुद्रा की प्रवाह धारणा से अभिप्राय समय की निश्चित अवधि में मुद्रा की कुल मात्रा तथा उसके चलन वेग की गुणा से है। मुद्रा की पूर्ति को विभिन्न ढंग से परिभाषित किया जाता है।

1. **परम्परावादी दृष्टिकोण**—इस दृष्टिकोण के अनुसार मुद्रा केवल विनिमय के माध्यम के रूप में कार्य करती है।

   मुद्रा की पूर्ति = करेन्सी (नोट या सिक्के) + बैंकों की मांग जमा

   Money Supply = C + DD

2. **शिकागो स्कूल दृष्टिकोण**—इस दृष्टिकोण का प्रतिपादन शिकागों स्कूल के अर्थशास्त्री प्रो. मिल्टन फ्रिडमैन ने किया था।

   मुद्रा की पूर्ति = करेन्सी + मांग जमा + समय जमा

3. **गरले और शॉ दृष्टिकोण**—इस दृष्टिकोण के अनुसार मुद्रा की पूर्ति में बैंक जमाओं के अतिरिक्त विभिन्न साख पत्रों जैसे शेयर्स, यूनिट्स आदि को भी शामिल किया जाना चाहिए।

   मुद्रा की पूर्ति = करेन्सी + मांग जमा + रुपया जमा + शेयर + बाण्ड्स आदि।

4. **केन्द्रीय बैंकिंग दृष्टिकोण Or रेडक्लिक दृष्टिकोण**— इस दृष्टिकोण के अनुसार मुद्रा से अभिप्राय विभिन्न स्त्रोतों द्वारा दी गई साख है।

   मुद्रा की पूर्ति = करेन्सी + मांग जमा + समय जमा + बचत जमा खाता + शेयर + बाण्ड्स + सरकारी प्रतिभूतियां + असंगठित क्षेत्र से साख।

5. **भारत के रिजर्व बैंक का दृष्टिकोण**—केन्द्रीय बैंक के द्वारा मुद्रा की पूर्ति का मापन चार मापों द्वारा किया जाता है।

   $M_1 = C + DD + OD$

   $M_2 = C + DD + OD + SD$ or $M_2 = M_1 + SD$

   $M_3 = C + DD + OD + TD$ or $M_3 = M_1 + TD$

   $M_4 = C + DD + OD + TD + TP_P$ or $M_4 = M_3 + TP_P$

M_1 :

भारत जैसे अल्पविकसित देश के लिए मुद्रा की पूर्ति की संकुचित धारणा M1 सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। यह मुद्रा की चारों धारणाओं में सबसे अधिक तरल है। इसमें निम्न तत्वों को शामिल किया जाता है।

1. जनता के पास करेन्सी।

2. **बैंकों में मांग जमा**—व्यापारिक तथा सहकारी बैंकों की मांग जमा।

3. **रिजर्व बैंक के पास अन्य जमाएं**—जैसे IDBI, UTI तथा विदेशी सरकारों की जमा।

M_2

M_1 के अतिरिक्त डाकखानों के बचत बैंक की जमा को भी शामिल किया जाता है। रिजर्व बैंक ने स्वयं स्वीकार किया है कि वास्तव में डाकघरों के बचत बैंक, की उस राशि को जिसे चेकों द्वारा निकलवाया जा सकता है। M_1 में शामिल किया जाना चाहिए।

M_3

यह मुद्रा पूर्ति की विस्तृत धारणा है इसमें M_1 तथा बैंकों की सावधि जमाओं को भी शामिल किया जाता है।

M_4

यह मुद्रा पूर्ति की सबसे अधिक विस्तृत धारणा है। इसमें M_3 के अतिरिक्त डाकखानों की कुल जमा भी शामिल होती है।

भारत में मुद्रा पूर्ति को प्रभावित करने वाले तत्व :

1. **सरकार**—रिजर्व बैंक केन्द्रीय सरकार की प्रतिभूतियां खरीदकर तथा राज्य सरकारों को ओवर ड्राफ्ट देकर उनके पक्ष में पत्र मुद्रा का निगर्मन करता है।

2. **बैंक**—रिजर्व बैंक देश की अन्य बैंकिंग संस्थाओं तथा व्यापारिक क्षेत्र को सरकारी प्रतिभूतियां बिलों प्रोमिसरों नोटों के बदले में (High Powered Money) उच्च (कला युक्त) मुद्रा का हस्तांतरण करता है।

3. **विदेशी सौदे**—रिजर्व बैंक अन्य बैंकों तथा जनता से विदेशी प्रतिभूतियों तथा विदेशी मुद्रा प्राप्त करके उन्हें अपनी पत्र मुद्रा देता है। उपरोक्त तीनों तत्वों द्वारा अर्थव्यवस्था में उच्च बलयुक्त मुद्रा या संरक्षित मुद्रा की पूर्ति प्रभावित होती है।

M_3 को प्रभावित करने वाले तत्व

1. सरकार की शुद्ध बैंक साख का अनुमान सरकार को RBI के ऋणों में से RBI के पास सरकारी जमाओं को घटा कर जो शेष बचता है। उसमें अन्य बैंकों के ऋण जोड़ कर लगा लिया जाता है।

2. व्यवसायिक क्षेत्र को बैंक ऋण में RBI तथा अन्य बैंकों के द्वारा दिये गए ऋणों को शामिल किया जाता है।

3. सरकार की जनता के प्रति मौद्रिक देयताएं शामिल की जाती हैं।

4. बैंकिंग क्षेत्र की शुद्ध गैर-मौद्रिक देयताएँ **-** M_3 का अनुमान लगाते समय बैंकिंग क्षेत्र की शुद्ध गैर-मौद्रिक देयताएँ को कुल योग में से घटा दिया जाता है।

आलोचनाएँ :

1. **यह केवल रेखांकन धारणा है**—मुद्रा पूर्ति की विश्लेषणात्मक धारणा नहीं है। इनके द्वारा मुद्रा पूर्ति सम्बन्धी वास्तविक आकड़ों का ज्ञान नहीं होता।

2. **मुद्रा पूर्ति सिद्धान्त का अभाव**—मुद्रा पूर्ति की चार स्तरीय धारणा केवल एक माप है मुद्रा पूर्ति के सिद्धान्त का ज्ञान नहीं होता।

3. **साख निर्माण**—रिजर्व बैंक द्वारा दी गई धारणा में पूर्ति की व्याख्या हाई पावर मनी तथा मुद्रा के संघटकों को जोड़ती है। लेकिन M_1 हाई पावर मनी के अलावा साख निर्माण पर भी निर्भर करती है जिसके अवहेलना की गई है।

4. **रिजर्व बैंक द्वारा बैंकों को दी गई साख की अवहेलना**—मुद्रा पूर्ति की लेखांकन धारणा रिजर्व बैंक द्वारा अन्य बैंकों को दी जाने वाली साख की अवहेलना की है। इस धारणा के अनुसार RBI द्वारा अन्य बैंकों को दी गई साख का मुद्रा की पूर्ति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। लेकिन वास्तव में RBI द्वारा अन्य बैंकों को दी गई साख M_1 को प्रभावित करती है।

4. सारांश (Summary)

उपरोक्त अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि धातु मुद्रा का प्रयोग लम्बे समय तक रहा। परन्तु अन्त में पत्र मुद्रा ही सभी देशों में प्रचलित हो गई क्योंकि पत्र मुद्रा को मांग के अनुसार नियन्त्रित किया जा सकता है और आवश्यकता की पूर्ति की जा सकती है। क्योंकि प्रत्येक समय में किसी भी समाज में विभिन्न प्रकार की आर्थिक क्रियाओं हेतु मुद्रा की आवश्यकता होती है एवं रहेगी।

इसी प्रकार मुद्रा के सिद्धान्तों के अध्ययन के बाद यह निष्कर्ष निकलता है कि केन्ज का सिद्धान्त अधिक वास्तविक एवं तर्कसंगत है। जबकि मुद्रा का परिमाण सिद्धान्त विशेष अवस्थाओं में अपना महत्व रखता है। क्योंकि यह सिद्धान्त मुद्रा के दीर्घकालीन मूल्य के निर्धारण की उचित व्याख्या करता है जबकि केन्ज का सिद्धान्त मुद्रा के अल्पकालीन मूल्य निर्धारण पर प्रकाश डालता है।

जहाँ तक भारत में मुद्रा की पूर्ति का प्रश्न है तो हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि, राष्ट्रीय आय में वृद्धि की अपेक्षा काफी ज्यादा हो रही है। जिससे मुद्रा स्फीति को बढ़ावा मिल रहा है और कीमत स्तर में लगातार वृद्धि हो रही है।

5. प्रस्तावित पुस्तकें (Suggested Readings)

1. भारतीय वित्तीय प्रणाली —टी. आर. जैन एवं ओ. पी. खन्ना।
2. भारतीय वित्तीय प्रणाली —कुलदीप गुप्ता एवं डा. राजकुमार।

6. नमूने के प्रश्न (Self Assesment Questions)

1. वस्तु विनिमय की परिभाषा दें तथा वस्तु विनिमय की मुख्य कठिनाइयों का वर्णन करें। क्या वस्तु विनिमय आधुनिक अर्थव्यवस्थाओं में अप्रचलित हो गया है ?
2. विभिन्न प्रकार की मुद्राओं का वर्णन करें।
3. मुद्रा की परिभाषा दीजिए। मुद्रा के क्या कार्य हैं ?
4. विभिन्न आर्थिक प्रणालियों में मुद्रा के महत्व का वर्णन कीजिए।
5. मुद्रा एक अच्छा सेवक परन्तु बुरा स्वामी है व्याख्या करो।
6. फिशार के मुद्रा परिमाण सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
7. केन्ज द्वारा प्रतिपादित मुद्रा तथा कीमतों की आधारभूत समीकरण की व्याख्या करें।
8. भारत में मुद्रा की पूर्ति से क्या अभिप्राय है? मुद्रा की पूर्ति को कौन से तत्व प्रभावित करते हैं?

Paper : BC-206 (i) Indian Financial System Revised by : M.L. Singla

Lesson No : 2

Financial : Sources and Role in Economic Development

विषय सूची (Contents)

1. परिचय (Introduction)

2. उद्देश्य (Objective)

3. प्रस्तुतीकरण (Presentation)

   3.1 वित्त का अर्थ (Meaning of Finance)

      3.11 वित्त की आवश्यकता (Need of Finance)

      3.1.2 वित्त स्रोत (Source of Finance)

      3.1.3 समय के आधार वित्त की आवश्यकता (Need of Finance on the Basic of Time)

   3.2 आर्थिक विकास में वित्त की भूमिका (Role of Finance in Economic Development)

4. सारांश (Summary)

5. प्रस्तावित पुस्तकें (Suggested Readings)

6. नमूने के प्रश्न (Self Assessment Questions)

1. परिचय (Introduction)

आज भाषा में वित्त शब्द का प्रयोग रुपये पैसे की मांग के रूप में किया जाता है। एक गृहस्थी वित्त की मांग अपने दिन-प्रतिदिन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए करता है। व्यापारी तथा उत्पादक वर्ग वित्त की मांग इसलिए करता है ताकि वह इसका प्रयोग उद्योगों के नवीनीकरण या उत्पादन क्षमता का विस्तार करके धन कमा सके। सरकार वित्त शब्द का प्रयोग अपनी आय तथा व्यय की मदों के लिए करती हैं। आज हमारे पास क्या है भविष्य में हम क्या प्राप्त करना चाहते हैं। वित्त इसके बीच एक महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में कार्य करता है। वित्त किसी भी अर्थव्यवस्था की सम्पूर्ण समृद्धि एवं विकास में मुख्य धुरी के रूप में काम करता है। देश की आर्थिक और वित्तीय प्रणाली में वित्त की एक महत्वपूर्ण भूमिका है। वित्त एक धुरी है जिसके चारों ओर आर्थिक क्रियाएं घूमती रहती है।

2. उद्देश्य (Objective)

इस पाठ का उद्देश्य वित्त के विभिन्न स्रोतों एवं वित्त की आर्थिक विकास में भूमिका को दर्शाता है। इस पाठ का अध्ययन करने के बाद आप वित्त के विभिन्न साधनों मुख्यत: स्व-वित्त (Self-Financing) एवं उधार वित्त (Credit Finance) के बारे में विस्तार से जान सकेंगे। इसी प्रकार आपको इस पाठ के अध्ययन के बाद पता चलेगा कि व्यवसाय को किन-किन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु वित्त की दीर्घकालीन, मध्यमकालीन एवं अल्पकालीन आवश्यकता होती है और आर्थिक विकास की गति को तेज करने और अन्य क्षेत्रों के विकास को गति देने में वित्त की भूमिका कितनी अहम् है।

3. प्रस्तुतीकरण (Presentation)

इस अध्याय में वित्त के विभिन्न साधनों (स्व-वित्त एवं उधार वित्त) की विस्तार से व्याख्या की गई है। इसके अलावा संस्थाओं की वित्त की दीर्घकालीन, मध्यमकालीन एवं अल्पकालीन आवश्यकताओं का वर्णन किया गया है और अन्त में देश के आर्थिक विकास में वित्त के महत्व एवं भूमिका के बारे में चर्चा की गई है।

3.1 अर्थ (Meaning)

आक्सफोर्ड शब्दकोष के अनुसार, ''किसी व्यवसाय, किसी क्रिया अथवा किसी परियोजना को चलाने के लिए मुद्रा का प्रयोग वित्त कहलाता है।''

3.1.1 वित्त की आवश्यकता (Need of Finance)

वित्त की आवश्यकता हर व्यक्ति को पड़ती है चाहे वो उपभोक्ता हो, उत्पादक हो, आयातकर्त्ता या निर्यातकर्त्ता हो या फिर सरकार। सभी को निम्न आर्थिक क्रियाओं के लिए वित्त की जरूरत होती है।

1. वस्तुओं का उत्पादन तथा उपभोग के लिए
2. वस्तुओं की पैकिंग करने के लिए
3. परिवहन साधनों द्वारा ग्राहकों तक पहुंचाने के लिए
4. भुगतान प्राप्त करने तथा भुगतान देने के लिए
5. आयात निर्यात करने के लिए
6. विनिमय बिलों के लेन-देने के लिए
7. आर्थिक विकास की गति तीव्र करने के लिए

3.1.2 वित्त के स्रोत (Sources of Finance)

वित्त के स्रोतों को निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है।

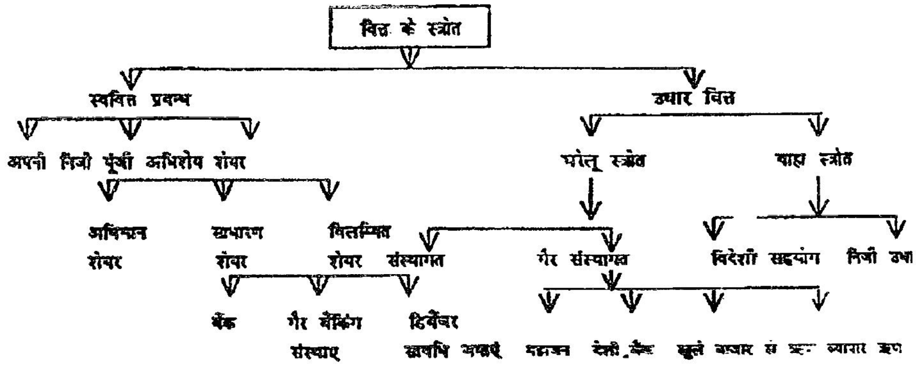

चित्र : 2.1

(A) स्ववित्त प्रबन्ध (Self-Financing)

स्ववित्त प्रबन्ध से अभिप्राय है कि उत्पादक तथा निवेशकर्ता अपने स्त्रोतों से वित्त का प्रबन्ध करता है। अत: यह वित्त व्यवस्था उस व्यवस्था को प्रकट करती है। जिसमें उद्यमी अपनी आवश्यकतानुसार अपने निजी स्त्रोतों से वित्त प्राप्त करने का प्रयास करता है। इसमें निम्न स्त्रोतों को शामिल किया जाता है।

1. **अपनी निजी पूंजी (Own Capital)**—जब कोई उद्यमी निजी व्यवसाय शुरू करता है तो प्रारम्भिक अवस्था में कर्मचारियों को वेतन देने के लिए, कच्चा माल खरीदने के लिए, मशीनरी खरीदने के लिए या इमारत के लिए। उसे ऐसे कई प्रबन्ध करने के लिए कुछ खर्चा करना पड़ता है तो इन सब पर वह अपनी जमा पूंजी को खर्च करता है। यह उसकी पिछली बचतें हो सकती है। प्रारम्भ में निवेश की गई निजी पूंजी यदि उद्यमी के काम को धीरे-धीरे सुचारू रूप से चला देती है तो यह उद्यमी को प्रेरणा देती है क्योंकि उद्यमी स्वभाव से ही महत्वाकांक्षी तथा आशावादी होते हैं। अत: उद्यमी अपनी थोड़ी पूंजी से ही सन्तुष्ट नहीं होता। प्रतियोगिता के युग में उसे अपने व्यवसाय का विस्तार तथा नवीनीकरण के लिए अधिक मात्रा में निवेश करना पड़ता है। इसलिए उसे वित्त के अन्य स्त्रोतों पर निर्भर रहना पड़ता है।

2. **प्रचालन अधिशेष (Operating Surplus)**—किसी फर्म की उत्पादन प्रक्रिया के दौरान, लगान, ब्याज तथा लाभ के जोड़ को प्रचालन अधिशेष कहा जाता है या गैर-मजदूरी आय को प्रचालन अधिशेष कहा जाता है। उद्यमी पूंजी के साथ-साथ उसे जो अधिक्य प्राप्त होता है वह इसका भी पुनर्निवेश कर देता है ताकि व्यवसाय का विस्तार किया जा सके। इसको अन्य प्रकार से भी कहा जा सकता है कि उद्यमी लाभ के एक हिस्से को (जिसे अवितरित लाभ कहा जाता है) शेयर होल्डर में वितरित न करके उसे अपने व्यवसाय में निवेश कर देता है तो इसे लाभ का पुन: निवेश कहा जाता है। जिससे वित्त के अन्य स्त्रोत उत्पन्न हो जाते हैं। इसे भी आन्तरिक प्रबन्ध (Internal Financing) कहा जाता है। प्रतिवर्ष आयकर देने के पश्चात् और लाभांश का एक भाग बांटने के बाद बची राशि को व्यवसाय में लगा दिया जाता है। इस प्रकार यह प्रतिधारित आमदनी उद्यम के विस्तार तथा नवीनीकरण के लिए एक अच्छा स्त्रोत बन जाती है।

3. **शेयर (Shares)**—स्ववित्त प्रबन्ध के रूप में जब ऊपरलिखित दोनों स्त्रोत अपर्याप्त रहते हैं तो उद्यमी अपनी कम्पनी या व्यवसाय के शेयर बेचता है। शेयर बेच कर वह कम्पनी के लिए वित्त का अच्छा प्रबन्ध कर सकता है। जब कोई कम्पनी अपनी पूंजी को छोटे-छोटे भागों में बाँटती है तो ये शेयर या कम्पनी के हिस्से कहलाते हैं। शेयरधारी कम्पनी के लाभ या हानि के लिए जिम्मेदार होते हैं। ये ही कम्पनी के स्वामी होते हैं। जब चाहे ये अपनी शेयर को बाजार में बेच सकते हैं। शेयर तीन प्रकार के होते हैं।

i. **अधिमान शेयर (Preference Shares)**—इन शेयरों पर लाभ एक निश्चित दर पर पहले ही निर्धारित होता है। कम्पनी को लाभ हो या हानि इन शेयरधारियों को पहले से निर्धारित निश्चित लाभ दर पर सबसे पहले लाभांश मिलता है।

ii. **साधारण शेयर (Ordinary Shares)**—अधिमान शेयरधारियों को लाभांश देने के बाद जो लाभ बचता है उसमें से साधारण शेयरधारियों को उनका लाभांश दिया जाता है। इन पर लाभांश की दर निश्चित नहीं होती। अधिक लाभ होने पर इन्हें लाभ अधिक मिलता है और लाभ कम होने पर इन्हें लाभांश कम मिलता है।

iii. **विलम्बित शेयर (Deferred Shares)**—अधिमान तथा साधारण शेयरधारियों को लाभांश देने के बाद जो लाभ बचता है वह विलम्बित शेयरधारियों में बेचा जाता है। ये शेयर ज्यादातर कम्पनी के संस्थापक (Promoters) द्वारा खरीदे जाते हैं। इन शेयरों में सबसे ज्यादा जोखिम होता है अतः इन शेयरों को सामान्य-जनता स्वीकार करने को तैयार नहीं होती तो इन्हें कम्पनी के संस्थापक (promoters) ही खरीदते हैं। विलम्बित शेयर खरीदने वालों को जोखिम ज्यादा होने के कारण इन्हें लाभांश अन्य शेयरधारियों की अपेक्षा अधिक लाभ ही मिलता है।

(B) उधार या साख वित्त (Credit Finance)

जब स्ववित्त प्रबन्ध से उद्यमी को पर्याप्त भाग में वित्त नहीं मिलता तो वह उधार लेकर काम चलाता है। उधार वित्त के दो साधन हैं।

(i) घरेलू स्रोत (ii) बाहरी स्रोत

(i) घरेलू स्रोत (Domestic Sources)— जब देश की सीमा के अन्दर से ही वित्त का प्रबन्ध हो जाता है तो इसे घरेलू स्रोत से वित्त प्रबन्ध कहा जाता है। ये स्रोत भी दो प्रकार का होता है।

(a) संस्थागत स्रोत (Institutional Sources)— संस्थागत स्रोत में बैंक तथा अन्य वित्तीय और निवेश संस्थाओं को शामिल किया जाता है जो एक बाजार मुद्रा बाजार में मिलजुल कर काम करती है। इसमें निम्न स्रोतों को शामिल किया जाता है।

1. **व्यापारिक बैंक (Commercial Bank)**—प्रत्येक देश की वित्त प्रणाली में व्यापारिक बैंक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ये बैंक मुख्यतः अल्पकालीन ऋण देते हैं तथा लाभ प्राप्ति के उद्देश्य से कार्य करते हैं। ये बैंक जनता के जमाओं को स्वीकार करते हैं तथा व्यापार, उद्योग, वाणिज्य को ऋण देते हैं। जमाओं पर लोगों को ब्याज देते हैं तथा उधार दी गई राशि पर ब्याज देते हैं। ब्याज की दर का निर्धारण बाजार द्वारा या देश के केन्द्रीय बैंक द्वारा किया जाता है। भारत में इन बैंकों का वर्गीकरण निम्नलिखित आधार पर किया गया है।

(I) स्वामित्व के आधार पर वर्गीकरण (Classification on the basis of ownership)

स्वामित्व के आधार पर व्यापारिक बैंक तीन प्रकार के होते हैं—

1. **सार्वजनिक क्षेत्र में बैंक**—इसमें उन बैंकों को शामिल किया जाता है जिनका स्वामित्व पूर्णतया सरकार के हाथों में होता है तथा सरकार द्वारा ही इनका संचालन किया जाता है। भारत में सरकार ने 1969 में 14 बड़े बैंकों का तथा 1989 में 6 और बड़े बैंकों को राष्ट्रीयकरण करके इन्हें सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक घोषित किया।

2. **निजी क्षेत्र के बैंक**—निजी क्षेत्र के बैंक वो बैंक है जिनका स्वामित्व निजी क्षेत्र के पास है तथा उनका संचालन भी उन्हीं के द्वारा किया जाता है। भारत में ऐसे 40 बैंक हैं जैसे—विजय बैंक।

3. **सहकारी बैंक**—सहकारी बैंक उन बैंकों को कहा जाता है जिनका संचालन निजी व्यक्तियों के एक समूह द्वारा किया जाता है। ये बैंक सहकारिता के सिद्धान्तों द्वारा चलाये जाते हैं। इन बैंकों का मुख्य उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्र के लोगों को सुविधाजनक साख उपलब्ध करना है। व्यापारिक बैंकों की तरह ये बैंक भी लोगों की जमाएं स्वीकार करते हैं और केवल अपने सदस्यों को ऋण देते हैं। इनका मुख्य उद्देश्य लाभ कमाना नहीं होता।

(II) **कार्यों के आधार पर वर्गीकरण**—कार्यों के आधार पर बैंकों का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया जाता है।

1. **व्यापारिक बैंक**—अल्पकालीन ऋण प्रदान करते हैं।
2. **औद्योगिक बैंक**—केवल उद्योगों की साख सम्बन्धी जरूरतों को पूरा करते हैं।
3. **कृषि बैंक**—कृषि के विकास के लिए अल्पकालीन, मध्यकालीन तथा दीर्घकालीन ऋण प्रदान करते हैं।
4. **केन्द्रीय बैंक**—मुद्रा का निर्गमन तथा साख नियन्त्रण का कार्य करता है। यह सर्वोच्च बैंक होता है।
5. **विनिमय बैंक**—विदेशी मुद्रा के लेन-देन सम्बन्धी कार्य करता है।

2. **गैर-बैंकिंग संस्थाएं (Non-Banking Institutions)**—व्यापारिक बैंकों तथा सहकारी बैंकों के अलावा कुछ ऐसी संस्थाएं हैं जो वित्त के लेन-देन का काम करती हैं। इन्हें गैर-बैंकिंग वित्तीय संस्थाएं कहा जाता है। यह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में लोगों की जमाएं एकत्रित करती हैं तथा उधार लेने वालों को इन कोषों में से उधार भी देती हैं। इनको दो भागों में बांटा जाता है।

(I) **निवेश गृह**—जैसे यूनिट ट्रस्ट ऑफ इण्डिया, भारतीय जीवन बीमा निगम तथा भारतीय औद्योगिक तथा साख नियम।

(II) **विकास बैंक**—जैसे भारतीय विकास बैंक IDBI भारतीय औद्योगिक वित्त निगम IFCI

3. **डिबेंचर/सावधि जमाएँ (Debentuires/Time Deposits)**—स्थाई पूँजी प्राप्त करने के उद्देश्य से शेयरों की भांति कम्पनियां डिबेंचर भी जारी करती हैं। परन्तु इनमें निवेश करने वाले व्यक्ति कम्पनी के स्वामी न होकर केवल ऋणदाता होते हैं। डिबेंचरधरी को निश्चित दर पर लाभ दिया जाता है चाहे कम्पनी को लाभ हो या हानि हो। कई कम्पनियां ऋण प्राप्ति के लिए सावधि जमाएं भी स्वीकार करती हैं इन पर ब्याज देती है। लेकिन कम्पनी ये जमाएँ 3 वर्ष से ज्यादा के लिए जनता की जमाएं स्वीकार नहीं कर सकतीं।

(b) **गैर-संस्थागत स्रोत (Non-Institutional Source)**—गैर-संस्थागत वित्त स्रोतों में देशी बैंक, साहूकार महाजन आदि आते हैं। केन्द्रीय बैंकिंग जांच समिति के अनुसार साहूकार दो प्रकार के होते हैं—

1. **पेशेवर साहूकार**—जिनका मुख्य कार्य मुद्रा उधार देना है। इसके साथ-साथ अपना कोई निजी व्यवसाय भी चलाते हैं लेकिन पेशा रुपये उधार देना होता है।

2. **गैर-पेशेवर साहूकार**—इसमें बड़े जमीदारों, आढ़ती तथा व्यापारियों को शामिल किया गया है जो अपना निजी व्यवसाय चलाते हैं लेकिन लाभ कमाने के उद्देश्य से अपने अतिरिक्त कोषों को उधार दे देते हैं।

साहूकारों को जमाएं प्राप्त नहीं होती वे सिर्फ अपनी जमाओं को ही उधार देते हैं ये सिर्फ लोगों को उधार देते हैं ये सिर्फ लोगों को उधार देते हैं यह नहीं देखते कि ऋण किस उद्देश्य के लिए गए है। इनके ऋणों पर ब्याज की दर भी ज्यादा होती है। साहूकार आसानी से अनुत्पादक कार्यों के लिए ऋण देते हैं। इसलिए ग्रामीण क्षेत्रों में इन देशी बैंकर्स का जाल बिछा होता है। कई बार तो ब्याज की राशि मूलधन से ज्यादा होती है। उसके बावजूद ग्रामीण क्षेत्र के लोग इनसे ऋण लेते हैं।

(II) बाह्य स्रोत (External Source)

जब आन्तरिक तथा घरेलू स्रोतों से वित्त पर्याप्त मात्रा में नहीं मिलता तो बाह्य स्रोत का सहारा लेना पड़ता है। बाह्य स्रोत को विदेशी सहायता कहा जाता है। विदेशी सहायता में विदेशी ऋण, विदेशी अनुदान होता है जिसे तकनीकी सहायता, पूंजीगत पदार्थों तथा विदेशी तकनीकी विशेषज्ञ प्राप्त करना होता है। अनुदान तथा ऋण में मुख्य अन्तर यह है कि ऋणों को ब्याज सहित वापिस करना पड़ता है जबकि अनुदान दान स्वरूप है इसे लौटाना नहीं पड़ता।

विदेशी पूंजी के रूप में बाह्य स्रोत का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया जाता है—

1. **निजी विदेशी निवेश (Private Foreign Investment)**—निजी विदेशी निवेश वह निवेश है जिसे एक देश के व्यक्तियों या निजी विदेशी कम्पनियों द्वारा दूसरे देश की निजी और सार्वजनिक संस्थाओं में किया जाता है। यह दो प्रकार का होता है।

   (A) **प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (Direct Foreign Investment)**—प्रत्यक्ष विदेशी निवेश में विदेशी कम्पनियों द्वारा देश की कम्पनियों का प्रबन्ध किया जाता है। इस प्रकार के निवेश में विदेशी निवेशकर्ता जोखिम उठाता है स्वयं लाभ तथा हानि का जिम्मेदार होता है।

   (B) **पोर्टफोलियो निवेश (Portfolio Investment)**— यह निवेश विदेशी कम्पनियों द्वारा किसी देश की कम्पनियों की शेयर पूंजी या डिबेंचरों में किया जाता है। इन कम्पनियों का संचालन तथा प्रबन्ध उन्हीं को सौंप दिया जाता है जिसमें वे स्थापित है। इस प्रकार के निवेश पर केवल ब्याज या निश्चित लाभांश की गारण्टी होती है अत: इस प्रकार के निवेश में निवेशकर्ता न प्रबन्ध में हिस्सा लेता है न ही किसी प्रकार का कोई जोखिम उठाता है।

   प्रत्यक्ष विदेशी निवेश और पोर्टफोलियों निवेश में मुख्य अन्तर यह है कि प्रत्यक्ष विदेशी निवेश में विदेशी कम्पनी उस उद्यम का प्रबन्ध भी करती है और लाभ हानि की जिम्मेदार होती है। जबकि पोर्टफोलियो में केवल पूंजी का निवेश करती है। निश्चित लाभांश प्राप्त करती है। प्रबन्ध में हिस्सा नहीं लेती।

2. **विदेशी सहयोग (Foreign Collaboration)**—विदेशी सहयोग से अभिप्राय यह है कि विदेशी व देशी उद्यम संयुक्त रूप से किसी उद्यम की स्थापना करते हैं। इन्हें संयुक्त उद्यम कहा जाता है ये सामान्यत: तीन प्रकार के होते हैं।

   i. निजी कम्पनियों में सहयोग

   ii. सरकार तथा निजी कम्पनियों में सहयोग

   iii. विभिन्न देशों की सरकारों में सहयोग

3. **विदेशी सरकार से ऋण (Loan from Foreign Govt.)**—जब एक देश की सरकार विदेशी सरकार से ऋण लेती है तो इसे विदेशी सरकार से लिया गया ऋण कहते हैं। ये ऋण निम्नलिखित प्रकार के होते हैं।

   i. **उधार ऋण (Soft Loans)**—उधार ऋण वह ऋण है जो दीर्घ काल के लिए दिये जाते हैं तथा जिनका ब्याज भी बहुत कम लिया जाता है।

   ii. **अनुदान ऋण (Hard Loans)**—अनुदान ऋण वे ऋण है जो अल्पकाल के लिए अधिक ब्याज की दर पर दिये जाते हैं।

   iii. **प्रोजेक्ट ऋण (Project Loans)**—प्रोजेक्ट ऋण वे ऋण हैं जो किसी विशेष परियोजना के लिए दिये जाते हैं।

   iv. **गैर-प्रोजेक्ट ऋण (Non-Project Loans)**—गैर-प्रोजेक्ट ऋण वह ऋण है जो किसी विशेष योजना से जुड़े नहीं होते हैं। इनका प्रयोग ऋणी देश अपनी इच्छानुसार कर सकता है।

   v. **निबद्ध ऋण (Tied Loans)**—निबद्ध ऋण वे ऋण हैं जो किसी देश या विशेष परियोजनाओं से जुड़े होते हैं इनका प्रयोग विशेष परियोजना के तहत विशेष देश में ही किया जा सकता किसी भी देश से सामान लेने के लिए नहीं किया जा सकता।

   vi. **अनिबद्ध ऋण (Untied Loans)**—इन ऋणों का प्रयोग ऋणी देश अपनी इच्छानुसार किसी भी परियोजना में, किसी भी देश में सामान खरीदने के लिए कर सकता है।

4. **अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं द्वारा ऋण (Loans from International Institutional)**—अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएं जैसे—अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (International Monetary Fund) विश्व बैंक (World Bank), अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगम (International Finance Corporation) आदि के द्वारा विदेशी पूंजी के रूप में ऋण दिये जाते हैं। ये संस्थाएं निजी क्षेत्र तथा सार्वजनिक क्षेत्र दोनों के लिए ऋण देते हैं। ये ऋण उदार, अनुदान, प्रोजेक्ट या गैर-प्रोजेक्ट ऋण हो सकते हैं।

5. **व्यापारिक ऋण**—व्यापारिक ऋण वे ऋण हैं जो विदेशों के बैंकिंग क्षेत्र से लिए जाते हैं। विदेशी बैंकिंग क्षेत्र ये ऋण निजी क्षेत्र तथा सार्वजनिक क्षेत्र दोनों को दिये जा सकते हैं।

6. **विदेशी सहायता (Foreign Aid)**—विदेशी पूंजी सहायता के रूप में प्राप्त हो सकती है। विदेशी सहायता से अभिप्राय है विदेशों से प्राप्त ऋण तथा अनुदान। विदेशी सहायता निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्र दोनों को दी जा सकती है।

3.1.3 समय के आधार पर वित्त की आवश्यकता (Need of Finance on the Basis of Time)

समय के आधार पर वित्त की आवश्यकता को तीन भागों में बांटा जा सकता है—

1. **दीर्घकालीन आवश्यकता** : पांच या सात वर्षों से अधिक की अवधि के लिए वित्त की आवश्यकता दीर्घकालीन वित्त आवश्यकता कहलाती है। दीर्घकालीन वित्त बन्धी परिसम्पत्ति खरीदने के लिए स्थाई कार्यशील पूंजी का प्रबन्ध करने तथा प्रारम्भिक खर्चों के भुगतान के लिए की जाती है। बन्धी परिसम्पत्तियों में भूमि, इमारत, प्लाण्ट व मशीनरी, फर्नीचर, फीटिंग आदि शामिल होते हैं। प्रारम्भिक खर्चे कम्पनी के आयोजकों द्वारा किये जाते हैं।

2. **मध्यमकालीन आवश्यकता (Medium Term) :** एक से पांच वर्ष की अवधि के लिए वित्त की जरूरत मध्यमकालीन वित्त की आवश्यकता कहलाती है। ऐसे कोषों का प्रयोग ऐसे प्रयोगों के लिए किया जाता है जो न तो बन्धी प्रकृति के होते हैं और न ही चालू प्रकृति के। जैसे मशीनरी अनुसंधान तथा विकास और विज्ञापन पर किया गया खर्च।

3. **अल्पकालीन आवश्यकता (Short-Term) :** जब वित्त की आवश्यकता एक वर्ष से कम अवधि के लिए है, तो यह वित्त की अल्पकालीन आवश्यकता कहलाती है। ये रूटीन खर्चो के लिए होती है। जैसे वेतन, मजदूरी, किराया आदि का भुगतान करना।

3.2 आर्थिक विकास में वित्त की भूमिका (Role of Finance in Economic Development)

आर्थिक विकास से अभिप्राय लोगों के जीवन स्तर में सुधार लाने के लिए अर्थव्यवस्था में सामाजिक, संस्थागत तथा तकनीकी परिवर्तनों से होता है। आर्थिक विकास एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। किसी भी देश का आर्थिक विकास उस देश में पाये जाने वाले वित्त तथा इससे जुड़ी संस्थाओं पर निर्भर करता है। क्योंकि वित्त निवेश का प्रजनन कर्ता होता है। इसलिए प्रत्येक अर्थव्यवस्था में पूंजी निर्माण में वित्त एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अन्य शब्दों में वित्त निम्नलिखित ढंग से आर्थिक विकास को प्रभावित करता है।

1. **बचतों को प्रोत्साहन**—किसी भी देश का आर्थिक विकास वित्त पर निर्भर करता है। देश में उपलब्ध वित्तीय तथा निवेश संस्थाएं, बचतों को प्रोत्साहन देती है। वित्त तभी उपलब्ध हो सकता है जब देश में बचतों को बढ़ाया जाये। बचतों में सबसे ज्यादा योगदान गृहस्थ का होता है। अत: वित्तीय संस्थाएं गृहस्थ क्षेत्रों के लोगों की जमाओं को आकर्षित करने के लिए विभिन्न योजनाएं प्रस्तुत करती है।

2. **बचतों का एकत्रीकरण**—वित्त की उपलब्धता के लिए सिर्फ बचत करना ही पर्याप्त नहीं है इन बचतों का एकत्रीकरण भी आवश्यक है। जिसके लिए देश में वित्तीय संस्थाएं अपनी शाखाओं का जाल बनाती हैं

3. **बचतों का वितरण**—एकत्रीकरण के बाद वर्तमान बचतों का अधिक कुशल रूप से वितरण भी निवेश संस्थाओं द्वारा किया जाता है। इन बचतों का वितरण इस प्रकार कुशल विधि से होता है कि सामाजिक तथा आर्थिक दृष्टिकोण से जिनको इनकी आवश्यकता है उनको प्राथमिकता दी जाती है तो आर्थिक विकास की गति को तेज किया जा सकता है। विभिन्न उपयोगों तथा उपयोगकर्ताओं में बचतों का आबंटन करके पूंजी निर्माण, उत्पादन तथा आर्थिक विकास को सहायता प्रदान करती है।

साख निर्माण (Credit Creation)

आर्थिक विकास में वित्त की आवश्यकता की पूर्ति करने वाला एक और तत्व है साख निर्माण। व्यापार, उत्पादन तथा वितरण को सुविधाजनक बनाने के लिए बैंक साख का निर्माण करते हैं। साख निर्माण अर्थव्यवस्था में व्यापार, उत्पादन तथा वितरण को और आगे ले जाने में सहायक सिद्ध होता है। इस प्रकार वित्तीय संस्थाएं आर्थिक विकास के क्रम को सुचारू रूप से चलाने के लिए वित्त की उपलब्धता को सुविधाजनक बनाती है।

अत: देश के आर्थिक विकास में वित्त की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। प्रत्येक अर्थव्यवस्था में, वित्त की उपलब्धता को सुविधाजनक बना कर वित्तीय प्रणाली का उद्देश्य आर्थिक विकास के सन्दर्भ में निम्नलिखित लक्ष्यों की प्राप्ति करना है :

1. **आर्थिक विकास की गति को तेज करना**: यह किसी भी आर्थिक प्रणाली का प्रथम तथा प्रमुख लक्ष्य होता है।

2. **उद्योगों का विकास :** देश में तेज गति से औद्योगीकरण आर्थिक विकास की दर को बढ़ाता है विशेषकर निजी क्षेत्र में उद्योगों के तीव्र आर्थिक विकास से अधिक उत्पादन के साथ-साथ रोजगार के स्तर को भी बढ़ाया जा सकता है।

3. **कृषि विकास**: उद्योगों के विकास के लिए कृषि का विकास होना अत्यन्त आवश्यक है। ये दोनों क्षेत्र एक-दूसरे पर निर्भर करते हैं। क्योंकि उद्योगों को कच्चे माल की पूर्ति कृषि द्वारा की जाती है।

4. **उद्यम वर्ग का विकास**: आर्थिक विकास में योगदान देने वाले उद्यमियों की कुशलता में वृद्धि करने के लिए उचित प्रबन्ध तथा तकनीक का विकास करना होता है।

5. **पिछड़े क्षेत्रों का विकास**: पिछड़े क्षेत्रों में विकास की रणनीति अपनाने के लिए आवश्यक है कि वहाँ पर आधारित संरचना जैसे—सड़कें, रेलवे, यातायात तथा संचार साधनों का विकास किया जाये तथा मानवीय विकास पर जोर दिया जाये। मानवीय पूंजी में निवेश किया जाए मानवीय पूंजी में निवेश से अभिप्राय मानव की कुशलता में वृद्धि के लिए उन्हें चिकित्सा, शिक्षा तथा अच्छी काम की दशाएँ उपलब्ध कराना है।

6. **ग्रामीण विकास :** लोगों के जीवन स्तर में वृद्धि के लिए ग्रामीण विकास आवश्यक है। ग्रामीण विकास के लिए आवश्यकता है। कृषि सम्बन्धी क्रियाओं तथा गैर-कृषि क्षेत्र को समर्थ प्रदान करना तथा उन परियोजनाओं के लिए वित्त उपलब्ध कराना है। जो सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है।

7. **अनुसंधान तथा विकास :** उद्योगों के विकास के लिए अनुसंधान तथा विकास के लिए वित्त उपलब्ध कराना क्योंकि नई तकनीक का आविष्कार वस्तु की कीमतें कम करती हैं तथा वस्तु की क्वालिटी में सुधार लाती है बड़े स्तर पर उत्पादन करने से कई प्रकार की आन्तरिक तथा बाहरी बचतें प्राप्त होती हैं। जिससे देश में औद्योगीकरण को महत्व दिया जा सकता है।

8. **सरलता तथा कीमत नियन्त्रण :** उपरोक्त सभी तत्वों के साथ-साथ तरलता तथा कीमत नियन्त्रण लोगों को बचत करने और उन बचतों को विकास में निवेश करने के लिए प्रेरित करता है। इससे अर्थव्यवस्था में कई क्षेत्रों का विकास होता है तथा रोजगार में वृद्धि होती है और पूर्ण रोजगार के लक्ष्य को प्राप्त किया जाता है। लोगों के जीवन स्तर में सुधार होता है। निर्धनता समाप्त होती है। लोगों के स्वास्थ्य में सुधार होता है। निरक्षरता में कमी होती है। अर्थात् मानवीय पूंजी का निर्माण होता है और आर्थिक विकास में निरन्तरता आती है।

अत: आर्थिक विकास की पूर्व शर्त निवेश को निरन्तर किया जाता है और वित्त निवेश का प्रजननकर्ता है। इसलिए प्रत्येक अर्थव्यवस्था में वित्त का महत्वपूर्ण स्थान है। वित्त किसी भी एक अर्थव्यवस्था की सम्पूर्ण संवृद्धि एवं विकास में एक कर्णधार का कार्य करता है।

4. सारांश (Summary)

इस पाठ का गहन अध्ययन करने के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि वित्त के मुख्यत: दो स्रोत हैं। स्ववित्त (Self-Finance) एवं उधार वित्त (Credit Finance)। स्वावित्त वह है जो व्यवसायी अपने

खुद के साधनों से निवेश करता है या जो व्यवसाय के पास प्रचालन अधिशेष होता है जबकि उधार वित्त से अभिप्राय उधार लिए गए धन से है। यह मुख्य तौर पर व्यापारिक बैंकों, गैर बैंकिंग संस्थाओं एवं ऋणपत्रों तथा बाण्डों के निर्गमन के साथ-साथ गैर संस्थागत स्रोतों से ऋण के तौर पर प्राप्त किया जाता है। इसके अलावा घरेलू साधनों से पर्याप्त मात्रा में वित्त की पूर्ति न होने पर बाह्य साधनों से विदेशी ऋण, विदेशी सहयोग एवं सहायता, विदेशी पूंजी निवेश आदि के तौर पर धन प्राप्त किया जाता है।

इसी प्रकार संस्थाओं को धन की आवश्यकता दीर्घकालीन, मध्यमकालीन एवं अल्पकालीन होती है। दीर्घकालीन मध्यकालीन एवं अल्पकालीन होती है। दीर्घकालीन एवं मध्यमकालीन वित्त की आवश्यकता भूमि, भवन एवं मशीनरी इत्यादि क्रय करने हेतु होती है। जबकि अल्पकालीन वित्त की आवश्यकता सामान्य तौर पर व्यवसाय के रूटिन (Routine) खर्चों के भुगतान हेतु एक वर्ष तक की अवधि के लिए पड़ती है। अन्त में हम निष्कर्ष के तौर पर कह सकते हैं कि बिना वित्त के देश के किसी भी क्षेत्र का विकास संभव नहीं है खासकर आर्थिक क्षेत्र का। अत: हर आर्थिक क्षेत्र के विकास की गति को तेज करने के लिए निरन्तर वित्त की आवश्यकता होती है चाहे वो औद्योगिक क्षेत्र हो, कृषि क्षेत्र हो, व्यापारिक क्षेत्र हो, ग्रामीण एवं पिछड़ा क्षेत्र हो।

5. प्रस्तावित पुस्तकें (Suggested Readings)

1. भारतीय वित्तीय प्रणाली—टी. आर. जैन एवं ओ. पी. खन्ना।
2. भारतीय वित्तीय प्रणाली—कुलदीप गुप्ता एवं डॉ. राजकुमार।

6. नमूने के प्रश्न (Self Assessment Questions)

1. वित्त की परिभाषा दें तथा वित्त की आवश्यकता एवं क्षेत्र की व्याख्या करें। समय के आधार पर वित्त आवश्यकता वर्गीकरण आप किस प्रकार करते हैं?
   (Define finance and discuss the need and scope of finance. How do you classify the requirement of finance on the basis of time ?)
2. वित्त से क्या अभिप्राय है? वित्त के मुख्य स्रोतों का वर्णन करें।
   (What is Finance ? Tell the various sources of finance.)
3. किसी देश के आर्थिक विकास में वित्त की क्या भूमिका है?
   (Discuss the role of finance in the economic development of a country.)

Paper : BC-206 (i) Indian Financial System **Revised by : M.L. Singla**

Lesson No : 3

Indian Financial System :
Components, Financial Inter mediaries, Capital Market and its Instruments.

विषय सामग्री (Contents)

1. परिचय (Introduction)
2. उद्देश्य (Objective)
3. प्रस्तुतीकरण (Presentation)
   3.1 भारतीय वित्तीय प्रणाली का अर्थ एवं परिभाषा
   3.2 भारतीय वित्तीय प्रणाली के अंग
      3.2.1 वित्तीय परिसम्प्रत्तियाँ
      3.2.2 वित्तीय बाजार
      3.3.3 वित्तीय मध्यवर्तीय या संस्थाएं
   3.3 वित्तीय संस्थाओं की भारतीय वित्तीय प्रणाली में भूमिका
4. सारांश (Summary)
5. प्रस्तावित पुस्तकें (Suggested Readings)
6. नमूने के प्रश्न (Self Assessment Questions)

1. परिचय (Introduction)

स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत का आर्थिक परिदृश्य काफी परिवर्तित हो गया है। जिसके परिणामस्वरूप देश में विभिन्न क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर आर्थिक प्रगति हुई और आर्थिक व्यवस्था में परिमाण की दृष्टि से विस्तार के साथ-साथ गतिविधियों में भी विविधता आई है। अत: इस दिशा में परिपक्वता हेतु देश में एक कार्यकुशल वित्तीय प्रणाली का होना आवश्यक है।

अर्थव्यवस्था के सम्पूर्ण विकास एवं उसे और सुदृढ़ बनाने के लिए देश में एक कार्यकुशल वित्तीय प्रणाली का होना आवश्यक है ताकि बचतों की पर्याप्त उपलब्धता (यदि है तो) को बहुत ही कुशल व प्रभावी ढंग से निवेश करके राष्ट्रीय उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सके।

2. उद्देश्य (Objective)—इस पाठ का उद्देश्य आपकों भारतीय वित्तीय प्रणाली से सम्बन्धित विस्तृत जानकारी देनी है अर्थात् भारतीय वित्तीय प्रणाली के ढांचे से अवगत करवाना है। आप इस पाठ का अध्ययन करने के बाद वित्तीय परिसम्पत्तियों, वित्तीय बाजार एवं वित्तीय मध्यवर्तियों के बारे में विस्तार से जान एवं समझ सकेंगे।

3. प्रस्तुतीकरण (Presentation)—इस अध्ययन में भारतीय वित्तीय प्रणाली का अर्थ एवं परिभाषा तथा वित्तीय प्रणाली के विभिन्न अंगों की विस्तार से व्याख्या की गई है।

3.1 भारतीय वित्तीय प्रणाली का अर्थ एवं परिभाषा

भारतीय वित्तीय प्रणाली क्या है? (What is Indian Financial System)

प्रत्येक देश की एक वित्तीय प्रणाली होती हैं जो उसके सम्पूर्ण विकास की रीढ़ की हड्डी है। वित्तीय प्रणाली से अभिप्राय संस्थागत प्रबन्धों के उस समूह से है जो अर्थव्यवस्था में वित्तीय आधिक्य (Financial Surplus) को उन व्यक्तियों और संस्थाओं से एकत्रित करती है जिसके पास वित्त की अधि कता होती है तथा इस वित्तीय आधिक्य को उन व्यक्तियों एवम् संस्थाओं को हस्तान्तरित करती है जिन्हें वित्त आधिक्य को उन व्यक्तियों एवम् संस्थाओं को हस्तान्तरित करती है जिन्हें वित्त की आवश्यकता होती है। (A financial system is a set of institutional arrangements through which financial surplus in the economy is mobilized from surplus unit and transferred to deficit spenders.)

परिभाषा (Definition)

वित्तीय प्रणाली की परिभाषा उन संस्थाओं, विपत्रों तथा बाजारों के समूह के रूप में की जा सकती है जो बचतों को एकत्रित और प्रोत्साहित करती है तथा उन्हें सबसे अधिक कुशल प्रयोग में गतिशील करती है। इस प्रणाली में व्यक्तियों (बचत कर्त्ताओं) मध्यस्थों, बाजारों तथा बचतों के प्रयोग कर्त्ताओं को शामिल किया जाता है। (Financial system may be defined as a set of institution, instruments and markets which foster saving and channels them to their most efficient use. The system consists of individuals (savers) intermediaries markets and users of savings.)

वित्तीय प्रणाली की उपरोक्त परिभाषा से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि भारतीय मौद्रिक प्रणाली वह प्रणाली है जिसमें वित्तीय परिसम्पत्तियाँ (Financial assets) जैसे करेन्सी, बैंक जमा, जीवन बीमा पॉलिसी, यूनिट, शेयर तथा अन्य प्रकार की जमाएं आदि वित्तीय बाजार (Financial market) जैसे मुद्रा बाजार तथा पूंजी बाजार और वित्तीय मध्यस्थ या वित्तीय संस्थाएं जैसे—बैंक तथा गैर बैंकिंग वित्तीय संस्थाएं शामिल होते हैं।

3.2 भारतीय वित्तीय प्रणाली के अंग (Components of Indian Financial System)

भारतीय वित्तीय बाजार के तीन प्रमुख अंग—

3.2 1 वित्तीय परिसम्पत्तियां (Financial Assets)

3.2.2 वित्तीय बाजार (Financial Market)

3.2.3 वित्तीय मध्यवर्तियां या संस्थाएं (Financial Intermediaries or Institutions)

भारतीय वित्तीय बाजार के प्रमुख अंगों को निम्नलिखित तालिका द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

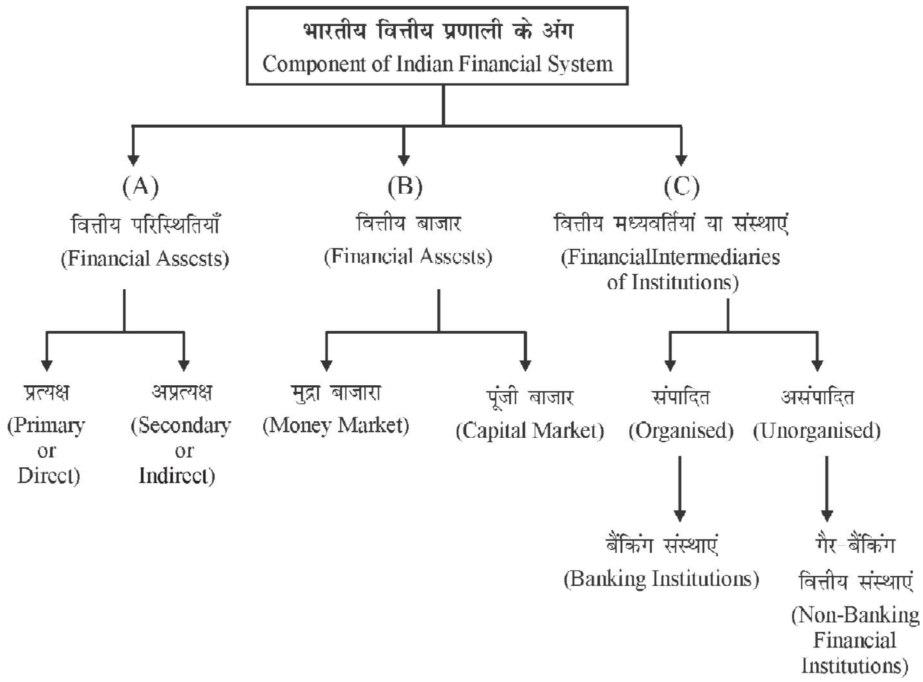

चित्र

3.2.1. वित्तीय परिसम्पत्तियाँ (Financial Assets)

भारतीय वित्तीय प्रणाली का एक प्रमुख अंग वित्तीय परिसम्पत्तियाँ हैं। वित्तीय परिसम्पत्तियां दूसरों पर वित्तीय दावे हैं। (Financial assets are claims on others) ये दो प्रकार की होती है।

1. **प्राथमिक या प्रत्यक्ष प्रतिभूतियां (Primary or Direct Securities)**—प्राथमिक या प्रत्यक्ष परिसम्पत्तियां वे प्रतिभूतियां है जो वास्तविक क्षेत्र की इकाइयों पर दावे प्रकट करती है। (Direct or Primary Financial assets are those securities which represent financial claims against real sectors.) उदाहरण के लिए बिल, बॉण्ड, शेयर, किताबों में दिखाए गए कर्जे (Book debts) आदि प्रत्यक्ष प्रतिभूतियां हैं। इन प्रतिभूतियों का निर्माण वास्तविक क्षेत्र के अन्तिम कर्जदारों के द्वारा अपने उन खर्चों की वित्त व्यवस्था करने के लिए किया जाता है जिन्हें वे अपने स्वयं के साधनों से पूरा नहीं कर सकते। इसलिए उन्हें दूसरों से एकत्रित करना पड़ता है।

2. **अप्रत्यक्ष या द्वितीयक प्रतिभूतियां (Indirect or Secondary Securities)**—अप्रत्यक्ष या द्वितीयक प्रतिभूतियों से अभिप्राय वित्तीय मध्यस्थों या संस्थाओं के विरुद्ध उन वित्तीय दावों से है जिनका निर्माण उस अवस्था में होता है जब वे जनता में वित्त एकत्रित करती है, उदाहरण के लिए रिजर्व बैंक द्वारा जारी की गई करन्सी अर्थात् नोट और सिक्के, बैंक जमाएं, जीवन बीमा पॉलिसी UTI इकाइयां, IDBI बॉण्ड आदि।

3.2.2 वित्तीय बाजार (Financial Market)

वित्तीय बाजार एक संस्था या व्यवसाय है जो वित्तीय परिसम्पत्तियों जैसे जमा और ऋण, स्टॉक और बॉण्ड, सरकारी प्रतिभूतियां, चैक बिल आदि के लेन-देन को सुविधाजनक बनाती है। वित्तीय बाजारों को दलाल, बैंक, गैर-बैंक, वित्तीय संस्थाएं, मर्जेन्ट बैंक, म्यूचुअल फंड, बट्टागृह, केन्द्रीय बैंक आदि अनेक संस्थाएं चलाती है। इन बाजारों का वर्गीकरण अल्पकालीन (Shortterm) तथा दीर्घकालीन

(Longterm) वित्तीय लेन–देन के आधार पर दो वर्गों में किया जाता है। जिस बाजार में अल्पकालीन वित्तीय उपकरणों की सौदेबाजी होती है उसे मुद्रा बाजार (Money Market) कहते हैं और दीर्घकालीन वित्तीय उपकरणों की सौदेबाजी के बाजार को पूंजी बाजार कहते हैं। यह वित्तीय बाजारों का कार्यात्मक (Functional) वर्गीकरण भी कहलाता है।

वित्तीय बाजारों का वर्गीकरण (Types of Financial Market)

- **(i) प्राथमिक वर्गीकरण (Primary)**— प्राथमिक बाजारों में वित्तीय परिसम्पत्तियों के नए नियमों का क्रय और विक्रय किया जाता है।
- **(ii) द्वितीयक वर्गीकरण (Secondary)**— द्वितीयक बाजारों में मौजूदा वित्तीय परिसम्पत्तियां बेची और खरीदी जाती है।
- **(iii) सौदेबाजी के आधार पर वर्गीकरण**— वित्तीय बाजारों का वर्गीकरण सौदेबाजी किए गए उपकरणों के आधार पर भी किया जाता है। इस वर्गीकरण में ऋण इक्विटी सेवा बाजार सम्मिलित होते हैं।

वित्तीय बाजारों का वर्गीकरण मुख्यतः दो भागों में किया जाता है–

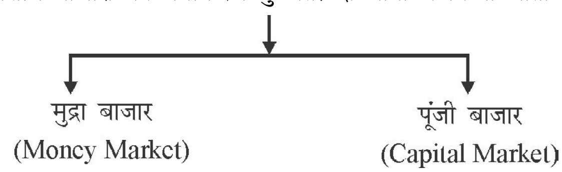

(A) मुद्रा बाजार (Money Market), (B) पूंजी बाजार (Capital Market)

(A) मुद्रा बाजार (Money Market)

मुद्रा बाजार से आशय उस बाजार से है जिसमें आपातकालीन मौद्रिक परिसम्पत्तियां बेची और खरीदी जाती है। मुद्रा बाजार एक वर्ष से या इससे कम समय में परिपक्व होने वाले अल्पकालीन ऋण–प्रपत्रों में शीघ्र और विश्वसनीय प्रपत्रों के स्थानान्तरण की सुविधा प्रदान करता है। (Money market is the centre of dealing mainly of short term character in monetary assets-Reserve Bank).

मुद्रा बाजार की संस्थाएं (Institutions of the Money Market)

भारतीय मुद्रा बाजार की वित्तीय संस्थाआं को संगठित और असंगठित क्षेत्रों में विभाजित किया जा सकता है।

(1) संगठित क्षेत्र (Organised Sector)—भारतीय मुद्रा बाजार का संगठित क्षेत्र वह क्षेत्र है जिसके चारों और क्रियाओं का क्रमबद्ध समन्वय मौद्रिक अधिकारी द्वारा किया जाता है। इसमें निम्नलिखित संस्थाएं शामिल होती हैं।

- **(a) भारतीय रिजर्व बैंक**—भारतीय मुद्रा बाजार की रिजर्व बैंक सबसे उच्चतम संस्था है यह देश का केन्द्रीय बैंक है।
- **(b) कमर्शियल बैंक (Commercial Bank) :**

कमर्शियल बैंक भी अल्पकालीन ऋणों का निबटारा करते हैं। इसमें निम्न बैंक शामिल हैं।

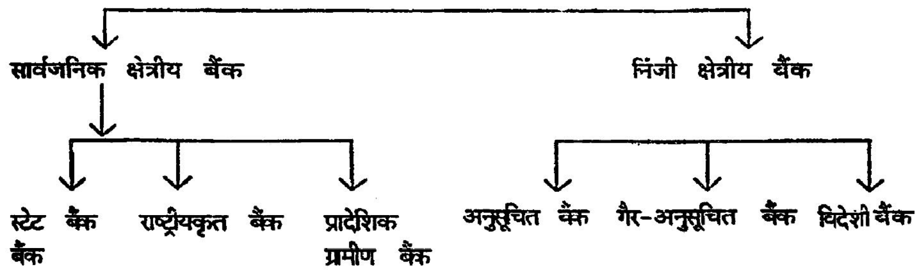

(C) **सहकारी बैंक**—वे सहकारी साख संस्थाओं के भाग हैं जिनका तीन स्तरीय ढांचा है।

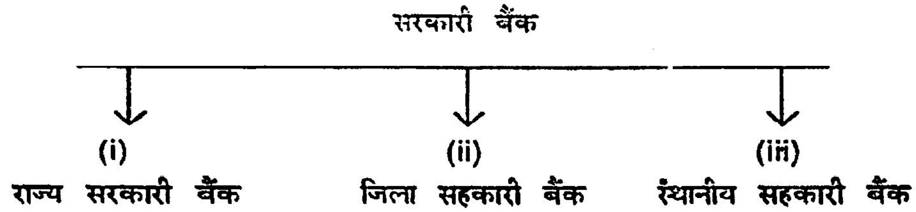

(2) **असंगठित बाजार (Organised Market)**—असंगठित बाजार वह बाजार है जिसकी क्रियाओं का समन्वय मौद्रिक अधिकारियों द्वारा नहीं किया जाता है। इसमें अधिकतम (i) देशीय बैंक, (ii) साहूकार, (iii) निधियां, (iv) चिटफण्ड शामिल हैं।

मुद्रा बाजार के उपकरण (Instruments of the Money Market)

1. **वचन पत्र (Promissory Note)**—वचन पत्र सबसे पुराने प्रकार का बिल होता है। यह किसी व्यवसायी की ओर से स्वीकृत भविष्य की तारीख पर मुद्रा की निश्चित रकम दूसरे व्यवसायी को चुकाने का लिखित वचन होता है। प्राय: वचन पत्र का भुगतान तीन दिन की छूट के साथ 90 दिन के बाद होता है। उधारदाता, वसूली की तारीख तक, अपने बैंक से इसे वट्टा (discount) भी करवा सकता है। U.S.A. वे सिवाय वचन पत्र आजकल व्यवसाय में कभी-कभी उपयोग लाये जाते हैं।

2. **विनिमय बिल या कमर्शियल बिल (Bill of Exchange of Commercial Bill)**—मुद्रा बाजार का दूसरा उपकरण विनिमय बिल होता है जो वचन पत्र के समान ही होता है सिवाय इसके यह उधारदाता द्वारा दिया जाता है। उधारदाता बैंक या दलालों से इसक बट्टा (Discount) करवा सकता है।

3. **खजाना बिल (Treasury Bills)**—मुद्रा बाजार का प्रमुख उपकरण खजाना बिल होता है जो एक वर्ष से कम की परिवर्तनशील अवधियों के लिए जारी किया जाता है। भारत में खजाना बिल प्राय: 91 दिन और 364 दिन के बीच बट्टा पर भारत सरकार द्वारा जारी किये जाते हैं।

4. **मांग और सूचना मुद्रा (Call and Notice Money)**—मांग मुद्रा बाजार में निधियों को एक दिन के लिए उधार लिया या दिया जाता है। सूचना बाजार में बिना किसी ऋणधार जमानत के 14 दिन तक निधियों के उधार दिये और लिये जाते हैं।

5. **अन्तर बैंक अवधि बाजार (Inter Bank Term Market)**—भारत में यह बैंक सिर्फ कमर्शियल और सहकारिता बैंकों के लिए होता है जो बाजार निर्धारित दरों पर बिना किसी ऋण आधार जमानत के 14 दिन से ऊपर और 90 दिन तक की अवधि के लिए निधियों की उधार लेते या देते हैं।

6. **जमा के प्रमाण-पत्र (Certificate of Deposit/CD)**—जमा के प्रमाण पत्र कमर्शियल बैंकों द्वारा अंकित मूल्य पर बट्टा के आधार पर जारी किये जाते हैं। बट्टा दर बाजार द्वारा निर्धारित की जाती है।

7. **व्यवसायिक पत्र (Commercial Paper/CP)**—व्यवसायिक बैंकों से उधार लेने की बजाय सीधे बाजार से अल्पकालीन चल पूंजी आवश्यकताओं को बढ़ाने के लिए ऊँचे मूल्यांकन वाली कम्पनियों द्वारा जारी किये जाते हैं। CP उधार लेने वाली कम्पनी द्वारा किसी निश्चित तारीख को ऋण चुकाने का वचन होता है जो सामान्यत: 3 महीने से 6 महीने की अवधि के लिए होता है।

मुद्रा बाजार के कार्य (Functions of Money Market/Importance of Money Market)

(1) **निधियां उपलब्ध करना (Provide Fund)**—मुद्रा बाजार, व्यवसायियों और निजी संस्थाओं को जिन्हें अपनी कार्यशील पूंजी की आवश्यकताओं के लिए वित्त की आवश्यकता है, अल्पकालीन निधियां उपलब्ध कराता है। कमर्शियल बैंकों, बट्टा, गृहों, दलालों और स्वीकृति गृहों के माध्यम से व्यापार बिलों को बट्टा कर ऐसा किया जाता है।

(2) **देशी निधियों का उपयोग (Use of Surplus Fund)**—इन संस्थाओं में न केवल कमर्शियल बैंक और अन्य वित्तीय संस्थाएं बल्कि बड़े गैर-वित्तीय व्यवसाय, निगम, राज्य और स्थानीय सरकारें भी शामिल होते हैं।

(3) **बैंकों से उधार लेने की आवश्यकता नहीं (No Need to Borrow from Banks)**—विकसित मुद्रा के होने से केन्द्रीय बैंक से कमर्शियल बैंकों द्वारा उधार की आवश्यकता नहीं होती है। यदि कमर्शियल बैंक अपने कोषों को नकद आवश्यकताओं से कम पाता है तो वह मुद्रा बाजार से ऋणों का कुछ भाग मांग सकता है।

(4) **सरकार को सहायता (Help of Govt.)**—मुद्रा बाजार सरकार को खजाना बिलों के आधार पर कम ब्याज दर पर अल्पावधि निधियों के उधार लेने में मदद करता है।

(5) **मौद्रिक नीति में सहायता (Helps in Monetary Policy)**—एक अल्पविकसित मुद्रा बाजार केन्द्रीय बैंक की मौद्रिक नीतियों को सफलतापूर्वक लागू करने में सहायता करता है।

(6) **वित्तीय गतिशीलता में सहायक (Helps in Monetary Policy)**—एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में निधियों के स्थानान्तरण को सहज बनाकर मुद्रा बाजार वित्तीय गतिशीलता में मदद पहुंचाता है।

(7) **तरलता और सुरक्षा को प्रोत्साहन (Promotes Liquidity and Safety)**—मुद्रा बाजार का एक महत्वपूर्ण कार्य वित्तीय परिसम्पत्तियों तरलता और सुरक्षा को बढ़ाना होता है।

(8) **निधियों की मांग और पूर्ति के बीच में सन्तुलन (Equilibrium between Demand & Supply)**—मुद्रा बाजार ऋण योग्य निधियों की मांग और पूर्ति के बीच सन्तुलन लाता है। ऐसा यह निवेश स्रोतों में बचतों में आबंटन द्वारा करता है।

(9) **नकदी के उपयोग में मितव्ययी (Economy is the Use of Cash)**—चूंकि मुद्रा बाजार असली मुद्र में नहीं बल्कि निकट-मुद्रा परिसम्पत्तियों में लेन-देन करता है इसलिए यह नकदी का मितव्ययितापूर्वक उपयोग करने में मदद करता है।

(B) पूंजी बाजार (Capital Market)

अर्थ और विशेषताएं (Meaning and Features)

पूंजी बाजार वह बाजार है जो दीर्घकालीन ऋणों में लेन-देन करता है, यह उद्योग को निर्धारित और कार्यशील पूंजी उपलब्ध कराता है तथा केन्द्रीय, राज्य और स्थानीय सरकारों को मध्यम अवद्यि और दीर्घकालीन अवधि के ऋणों के रूप में वित्तीय सहायता प्रदान करता है। पूंजी बाजार निगमों के साधरणतया: स्टॉकों, शेयरों, ऋणपत्रों और सरकारों के बाण्ड एवं प्रतिभूतियों का लेन-देन भी करता है। प्रो. डुगल के शब्दों में पूंजी बाजार में दीर्घकालीन ऋणों और शेयरों का लेन-देन होता है। (The Capital Market deals in long term funds both debt and equity—Dougal)

पूंजी बाजार के अंगों को दो भागों में बांटा जा सकता है। इसे हम निम्न चार्ट द्वारा भी दिखा सकते हैं।

पूंजी बाजार के अंग (Constituents of the Capital Market)

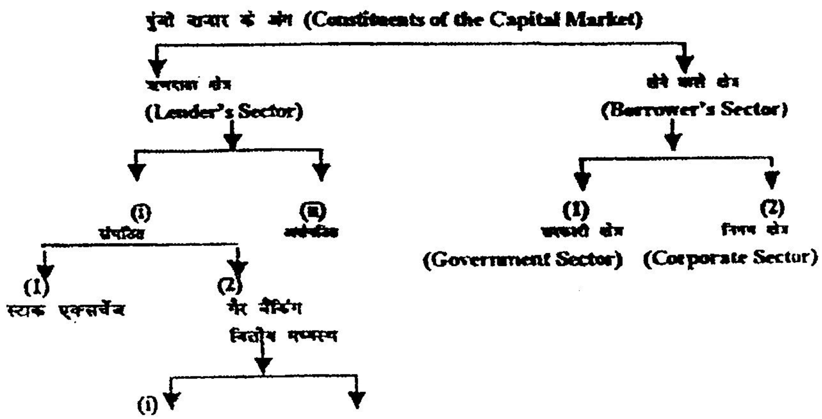

ऋणदाता क्षेत्र (Lendor's Sector) :

इस क्षेत्र के अंग वे व्यक्ति तथा संस्थाएं हैं जो दीर्घकाल के लिए ऋण देते हैं। इस क्षेत्र के दो अंग हैं।

A. संगठित क्षेत्र (Organised Sector)

पूंजी बाजार का संगठित क्षेत्र निम्नलिखित संस्थाओं से बनता है—

(1) **स्टॉक एक्सचेंज (Stock Exchange)**—स्टॉक एक्सचेंज निगम प्रतिभूतियों में व्यापार करता है जैसे—शेयर, डिबेंचर और बॉण्ड तथा सरकारी या Gilt adged प्रतिभूतियां। यह पूंजी बाजार का बहुत ही महत्वपूर्ण घटक है। इसमें (i) निगम प्रतिभूति बाजार (ii) सरकारी प्रतिभूति बाजार या Gilt Edged Security Market शामिल होते हैं। निगम प्रतिभूति का वर्गीकरण नया इश्यू बाजार और गौण बाजार में किया जा सकता है। गौण बाजार पुरानी निगम प्रतिभूतियां जैसे शेयर, डिबेंचर आदि का क्रय-विक्रय करता है।

(2) **गैर-बैंकिंग वित्तीय मध्यस्थ (Non Banking Financial Intermediaries)**—गैर-बैंकिंग वित्तीय मध्यस्थ वे संस्थाएं हैं जो बैंकों की भांति जनता से मांग जमाएं स्वीकार नहीं करती बल्कि लोगों की बचतें एकत्रित करती हैं। और विभिन्न पक्षों को इसे उधार देते हैं। ये मुख्यत: दो प्रकार की होती हैं।

1. विकास बैंक   2. निवेश संस्थाएं

1. **विकास बैंक :** ये बैंक विशिष्ट वित्तीय संस्थाएं हैं जो मध्यकालीन और दीर्घकालीन ऋण, धन प्रदान करते हैं। मुख्य विकास बैंक है।

   (i) भारतीय वित्तीय निगम लिमिटेड (IFCI)

   (ii) भारतीय साख और निवेश वित्त निगम लिमिटेड (ICICI)

   (iii) भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (IDBI)

   (iv) भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक (SIDBI)

   (v) भारतीय औद्योगिक पुन: निर्माण बैंक (IRBI)

   (vi) राज्य वित्त निगमें (SFC)

   (vii) राज्य औद्योगिक विकास निगमें (SIDC's)

2. **निवेश संस्थाएं (Investment Institutions)**—निवेश संस्थाएं वे संस्थाएं हैं जो निवेशकर्ताओं की बड़ी तथा बढ़ती संख्या द्वारा कम्पनियों के शेयरों और डिबेचरों में निवेश सुविधाओं का विस्तार करते हैं। इसमें निम्नलिखित संस्थाएं शामिल होती है।

   (i) भारत का यूनिट ट्रस्ट (UTI)

   (ii) भारतीय बीमा निगम (LIC)

   (iii) भारत की सामान्य बीमा निगम (GIC)

   हाल ही में निवेश की कुछ नई संस्थाएं हैं—

   (i) मर्चेण्ट बैंक

   (ii) म्यूचुअल फण्ड

   (iii) लीज कम्पनियाँ

   (iv) साहस पूंजी वित्त।

(B) असंगठित क्षेत्र (Unorganised Sector)—असंगठित क्षेत्र मुख्य रूप से देशी बैंकों और महाजनों, चिट, फण्डों, निधियों तथा ऐसी ही अन्य संस्थाओं, निवेश कम्पनियों, वित्त कम्पनियों, भाड़ा खरीद कम्पनियों आदि से मिलकर बना है। पूंजी की बाजार में असंगठित क्षेत्र की भूमिका बहुत कम महत्वपूर्ण है।

(I) ऋण लेने वाले क्षेत्र (Borrower's Sector)—ऋण लेने वाले क्षेत्र में उधार लेने वाले शामिल होते हैं जो मध्यम तथा दीर्घकालीन पूंजी की मांग करते हैं। इस क्षेत्र में निम्नलिखित शामिल होते हैं।

(a) सरकारी क्षेत्र (Government Sector)—इस क्षेत्र में (a) केन्द्रीय सरकार (b) राज्य सरकारें शामिल होती है। भारत में सरकार की विकासीय तथा गैर–विकासीय क्रियाओं के विशाल विस्तार के कारण सरकार द्वारा पूंजी कोषों के लिए मांग का एक महत्वपूर्ण स्रोत हैं। रेलें, सड़क, यातायात, बिजली निगम, जैसे सरकार के विभागीय उद्यम पूंजी बाजार से अपने लिए कोष एकत्रित करते हैं। केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों और सार्वजनिक निकायों ने लम्बी अवधि के लिए प्रतिभूतियों बाण्डों आदि को Gilt Edged Securities कहा जाता है।

(b) **निगम क्षेत्र (Corporate Sector) :** निजी तथा सार्वजनिक निगम दोनों सार्वजनिक क्षेत्र विभिन्न कारणों से दीर्घकालीन पूंजी की मांग करते हैं। वे (i) शेयर जारी करके (ii) डिबेचर बेचकर (iii) विकास बैंकों तथा निवेश संस्थाओं से उधार लेकर (iv) सामान्य जनता से सर्वाधिक जमाएं आमन्त्रित करके दीर्घकालीन कोष एकत्रित करते हैं।

पूंजी बाजार के उपकरण (Instruments of Capital Sector)

पूंजी बाजार के निम्न उपकरणों के माध्यम से लेन–देन होता है।

(1) **निगम स्टॉक (Corporate Sector)**—निगम स्टॉक में कम्पनियों द्वारा जारी की गई अनेक प्रकार की प्रतिभूतियाँ होती हैं जिनमें उनके अधिमान (Preference), बोनस एवं राइट इश्यू शेयर, बाण्ड परिवर्तनीय तथा गैर–परिवर्तनीय डिबेचर आदि शामिल होते हैं।

(2) **बंधक (Mortages)**—बंधक एक ऋण उपकरण होता है जो किसी घर, व्यवसाय, फार्म आदि को खरीदने के लिए जमानत के रूप में रख कर ऋण लिया जाता है। गृह एसोसिएशन, बीमा कम्पनियां, कमर्शियल बैंक, गृह विकास निगम आदि के आधार पर ऋण देते हैं।

(3) **सरकारी प्रतिभूतियां (Non-Securities)**—केन्द्रीय और राज्य सरकारें तथा स्थानीय निकास, प्रतिभूतियां एवं बाण्ड जारी करते है। इन्हें सर्वोत्तम प्रतिभूतियां (Gilt Edged Securities) कहा जाता है। ये दीर्घकालीन होती हैं जिन्हें जनसाधरण बैंक तथा वित्तीय संस्थाएं खरीदते हैं।

(4) **उपभोक्ता और कमर्शियल कर्जे (Consumer and Commercial Loans)**—उपभोक्ता कर्जे व्यक्तियों द्वारा कार घरेलू वस्तुएं खरीदने के लिए बैंकों और अन्य वित्तीय संस्थाओं से मध्यम अवधि के लिए होते हैं जबकि कमर्शियल कर्जे व्यवसायियों द्वारा मध्यम अवधि के लिए होते हैं।

(5) **विदेशी बाण्ड (Foreign Bond)**—कई कम्पनियां विश्व पूंजी बाजार में अपने बाण्ड जारी करती हैं जो जिस देश में कम्पनी स्थापित हो उसी को करेंसी में होते हैं। लेकिन विकासशील देशों की कम्पनियों द्वारा जारी बाण्ड प्राय: डॉलर में होते हैं।

पूंजी बाजार का महत्व अथवा कार्य (Importance and Function of Capital Market)

पूंजी बाजार बचतों को जुटाने और इन्हें वाणिज्य तथा उद्योग के विकास के लिए उत्पादन निवेशों में प्रवाहित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसी प्रकार पूंजी बाजार राज्य के पूंजी निर्माण और विकास में सहायता करता है।

(1) **बचतकर्ता तथा निवेशकों के बीच महत्वपूर्ण कड़ी**—पूंजी बाजार बचतकर्ता और निवेशकों के बीच एक महत्वपूर्ण कड़ी का काम करता है। बचतकर्ता निधियों के ऋणदाता है। अपनी समूची आय खर्च न करने वाले बचतकर्ताओं को बेशी इकाईयां (surplus unit) और ऋणियों को घाटे की इकाईयों (deficit unit) के रूप में जाना जाता है। पूंजी बाजार और घाटे की इकाईयों में संचारण (Transmission) तन्त्र होता है। यह एक ऐसी नाली है जिसके जरिए बेशी इकाईयां अपनी बेशी निधियां, घाटे की इकाईयों को उधार देती है।

(2) **ब्याज तथा लाभांश के रूप में प्रोत्साहन**—पूंजी बाजार बचतकर्ताओं को ब्याज अथवा लाभांश के रूप में प्रोत्साहन देते हैं और निवेशकों को निधियां हस्तान्तरित करते हैं। इस प्रकार पूंजी निर्माण होता है।

(3) **स्टॉक तथा प्रतिभूति के मूल्यों में स्थिरता**—यह जरूरतमंदों को उचित ब्याज दर पर पूंजी उपलब्ध कराता है और बट्टा गतिविधियों को कम करने में सहायता देता है।

(4) **आर्थिक वृद्धि को प्रोत्साहन**—पूंजी बाजार आर्थिक वृद्धि को प्रोत्साहित करता है पूंजी बाजार में कार्य करने वाली संस्थाएं आबंटन करती है। उक्त संस्थाएं वित्तीय परिसम्पत्तियों को उत्पादक वास्तविक परिसम्पत्तियों में परिवर्तित करके ऐसा करती है। निजी और सार्वजनिक उपक्रमों के लिए जरिए वाणिज्य और उद्योग का विकास होता है इससे आर्थिक वृद्धि को प्रोत्साहन मिलता है।

मुद्रा और पूंजी बाजार के अन्तर (Difference between Money and Capital Market)

(1) मुद्रा बाजार अल्पकालीन निधियों में लेन-देन करता है। दूसरी ओर पूंजी बाजार उद्योग सरकार द्वारा अपेक्षित दीर्घकालीन निधियों का लेन-देन करता है।

(2) मुद्रा बाजार में अल्पकालीन निधियों से अभिप्राय एक वर्ष से कम अवधि का होता है। जबकि पूंजी बाजार में दीर्घकालीन निधियां 25 वर्ष की अवधि तक की होती है।

(3) मुद्रा बाजार वचनपत्र, विनिमय बिल, राजकोषीय बिल, जमा प्रमाण पत्र, वाणिज्यिक कागज पत्र आदि प्रपत्रों का प्रयोग करता है। दूसरी ओर पूंजी बाजार औद्योगिक इकाइयों के शेयर, जमा पत्र और बाण्ड तथा सरकार के बाण्ड्स एवं प्रतिभूतियां जैसे दीर्घकालीन प्रतिभूतियों को काम में लाता है।

(4) मुद्रा बाजार और पूंजी बाजार में कार्यरत संस्थाएं एक-दूसरे से भिन्न होती है। केन्द्रीय बैंक, वाणिज्यिक बैंक, गैर-बैंक वित्तीय मध्यस्थ तथा बिल दलाल मुद्रा बाजार में लेन-देन करते हैं। दूसरी ओर स्टॉक एक्सचेंज, पारम्परिक निधियां, लीजिंग कम्पनियां, निवेशक बैंक, निवेश ट्रस्ट बीमा कम्पनियां आदि पूंजी बाजार प्रपत्रों में व्यवहार करते हैं।

3.2.3 वित्तीय मध्यवर्तियां (Financial Intermediaries)

भारतीय वित्तीय प्रणाली का एक प्रमुख अंग वित्तीय मध्यवर्तियाँ (Financial Intermediaries) है। वित्तीय मध्यवर्तियों से अभिप्राय उन संस्थाओं से है जो बचत कर्त्ताओं से उनकी बचतें एकत्रित करती हैं तथा उन्हें निवेश कर्त्ताओं को प्रयोग करने के लिए देती है। अन्य शब्दों में वित्तीय मध्यवर्तियां वे संस्थाएं हैं जो ऋणदाताओं (Lenders) तथा अन्तिम ऋणियों (Borrowers) के बीच मध्यस्थ का कार्य करती है। इनका मुख्य कार्य आर्थिक इकाईयों से बचत या वित्तीय आधिक्य एकत्रित करना है तथा उन आर्थिक इकाईयों को उधार देना है जिनका व्यय उनकी आय से अधिक होता है, अर्थात् जो निवेशकर्ता या उपभोक्ता होता है। ये वित्तीय संस्थाएं वित्तीय परिसम्पत्तियों का क्रय-विक्रय करती हैं। वित्तीय संस्थाओं का वर्गीकरण मुख्य रूप से दो प्रकार से किया जा सकता है।

(i) संस्थागत या संगठित (Institutional or Organised)

(ii) गैर-संस्थागत या असंगठित (Non-Institutional or Unorganised)

(i) संस्थागत या संगठित

संस्थागत या संगठित संस्थाएं वे संस्थाएं हैं जिस पर देश के केन्द्रीय बैंक या रिजर्व बैंक का नियन्त्रण होता है। इन्हें मुख्य रूप से दो भागों में बांटा जा सकता है।

(a) बैंकिंग संस्थाएं (Banking Institutional)

(b) गैर–बैंकिंग वित्तीय संस्थाएं (Non Banking Financial Intermediaries)

(a) बैंकिंग संस्थाएं और बैंक—बैंक शब्द की उत्पत्ति इटालियन भाषा के शब्द Banco, (बैंकों) से हुई मानी जाती है जो फ्रेंच भाषा के शब्द से Banke (बैंकों) से बदलता हुआ अंग्रेजी भाषा में बैंक हो गया है। बैंकों का अभिप्राय बैंच से है पहले कुछ लोग बैंचों पर बैठकर मुद्रा का लेन–देन करते थे। इस प्रकार बैंक शब्द की उत्पत्ति के बारे में कुछ कहना कठिन है परन्तु यह असन्दिग्ध रूप से (definitely) कहा जा सकता है कि आधुनिक बैंकों का आरम्भ यूरोप से हुआ और बाद में ये शनै–शनै सारी दुनिया में फैल गया।

बैंक की परिभाषा (Definition of Bank)

बैंक एक ऐसी संस्था है जो लोगों के डिपोजिट्स को स्वीकार करती है, जनता की बचतों को एकत्रित करती है, उसकी सुरक्षा करती है, उन जमाओं को चैक द्वारा वापिस किया जाता है। बैंक जिन लोगों को आवश्यकता होती है उन्हें उधार देती है और अन्य एजेन्सी का कार्य करती है व साख का निर्माण करती है। भारतीय बैंकिंग कम्पनी एक्ट के अनुसार, "बैंकिंग कम्पनी वह कम्पनी है जो बैंकिंग का कार्य करती है से अभिप्राय उधार देने या निवेश के उद्देश्य से जमा रूप में जनता से मुद्रा स्वीकार और इसका भुगतान मांगने पर चैक, ड्राफ्ट, आदेश या अन्य किसी प्रकार के भुगतान करना है।"

(Banking company is one which transacts the business of banking which means the acceptance for the purpose of lending or investment of deposits of money from the public repayable on demand or otherwise and withdrawable by cheque, draft order or otherwise—Indian Banking Companies Act.)

वेब्स्टर शब्दकोष के अनुसार (Webster's Dictionary) "बैंक वह संस्था है जो द्रव्य में व्यवसाय करती है, एक ऐसा प्रतिष्ठान है जहाँ धन का जमा, संरक्षण तथा निर्गमन होता है तथा ऋण एवं कटौती की सुविधाएं प्रदान की जाती हैं और एक स्थान से दूसरे स्थान पर रकम भेजने की व्यवस्था की जाती है।

(Webster's Dictionary, "An institution which trades in money, establishment for the deposit, custody and issue of money as also for making loans and discount & facilitating the transmission of remittance from one place to another.)

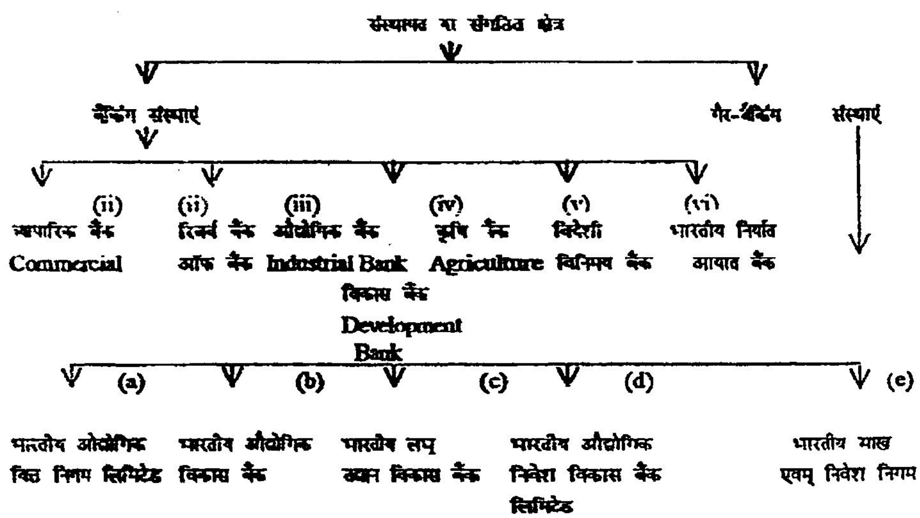

चित्र

(a) बैंकिंग संस्थाएं

1. **व्यापारिक बैंक (Commercial Bank)**—व्यापारिक बैंक वे बैंक हैं जो लोगों का रुपया जमा करते हैं तथा कई उद्देश्यों के लिए उधार देते हैं। इन्हें व्यापारिक बैंक इसलिए कहा जाता है क्योंकि पहले ये केवल व्यापार के लिए ऋण देते थे किन्तु अब किसानों, उद्योगों, ट्रांसपोर्टरों तथा छोटे उद्यमियों को अल्पकालीन व दीर्घकालीन ऋण देते हैं। ये बैंक अन्य बैंकिंग कार्य जैसे रुपया भेजना, चैक, ड्राफ्ट, विनिमय बिलों आदि में लेन-देन करते हैं। भारत में भारतीय स्टेट बैंक, सेन्ट्रल बैंक ऑफ इण्डिया, न्यू बैंक ऑफ इण्डिया, यूनाइटेड कमर्शियल बैंक आदि व्यापारिक बैंक हैं।

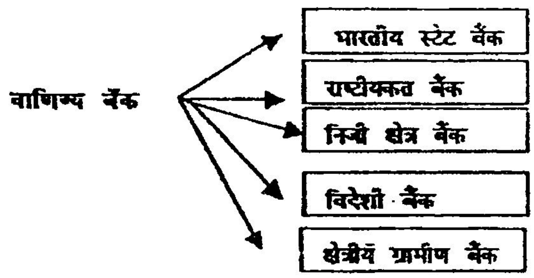

चित्र

व्यापारिक बैंकों के कार्य

(1) मुद्रा का उधार लेना, जुटाना तथा जमा एकत्र करना।

(2) प्रतिभूति सहित अथवा इसके बिना मुद्रा उधार देना अथवा अग्रिम करना।

(3) विनिमय पत्र का आहरन तैयार करना, स्वीकार करना, बट्टा करना, क्रय विक्रय संग्रह और लेन-देन करना, हुंडिया, वचन पत्र, कूपन, ड्राफ्ट, लदान पत्र, रेलवे रसीदें, वारंट, डिबेंचर, प्रमाण पत्र, शेयर और अन्य प्रतिभूतियां चाहे हस्तांतरणीय अथवा विनिमय अथवा नहीं।

(4) साख पत्रों, यात्री चैकों एवं सर्कुलर नोट का ग्रांट एवं निर्गम करना।

(5) स्वर्ण बिंदुओं का क्रय-विक्रय और लेन-देन करना।

(6) विदेशी बैंक नोटो सहित विदेशी मुद्रा खरीदना और बेचना।

(7) ग्राहकों के मूल्यवान उपकरणों की अभिरक्षा के लिए सुरक्षा जमा कक्ष प्रदान करना।

(8) क्रेडिट कार्ड जारी करना।

(9) मर्चेन्ट बैंकिंग में लगाव।

(10) उपभोग ऋण, शिक्षा ऋण, आवास ऋण प्रदान करना।

2. **रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया (Reserve Bank of India)**—संसार के सभी महत्वपूर्ण देशों के केन्द्रीय बैंक मौद्रिक प्रणाली एवं वित्तीय प्रणाली की केन्द्रीय धुरी के समान है। केन्द्रीय बैंक देश का सर्वोच्च बैंक होता है। किसी भी देश में सरकार की आर्थिक क्रियाएं केन्द्रीय बैंक के माध्यम

से ही संचालित होती है। भारत में इसे रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया, इंग्लैण्ड में बैंक ऑफ इंग्लैण्ड तथा फ्रांस में बैंक ऑफ फ्रांस के नाम से जाना जाता है। इसकी स्थापना 1935 में की गई थी। सन् 1949 में इसका राष्ट्रीयकरण किया गया। रिजर्व बैंक का प्रबन्ध केन्द्रीय संचालन बोर्ड करता है। वर्तमान संचालक बोर्ड के 20 सदस्य है। इसके अध्यक्ष को गवर्नर कहा जाता है। इसकी नियुक्ति भारत सरकार द्वारा की जाती है। बैंक का प्रधान कार्यालय मुम्बई में स्थित है।

(Function of Central/Reserve Bank)—

(1) नोट निगर्मन का अधिकार—वर्तमान समय में विश्व के प्रत्येक देश में नोट छापने का एकमात्र अधिकार केन्द्रीय बैंक को ही प्राप्त है। रिजर्व बैंक 2, 5, 10, 20, 50, 100, 500 तथा 1000 रुपये के नोटों का निर्गमन करता है।

(2) साख नियन्त्रण के कार्य—रिजर्व बैंक देश की साख नीति निर्धारित करता है तथा साख की मात्रा पर नियन्त्रण रखता है। इसके लिए वह कई उपाय अपनाता है। जैसे—(i) बैंक दर में परिवर्तन : बैंक दर ब्याज की वह दर है जिस पर केन्द्रीय बैंक दूसरे बैंको को उधार देता है। (ii) खुले बाजार की प्रक्रिया (Open Market Operation) अर्थात् खुले बाजार में सरकारी प्रतिभूतियों को खरीदना और बेचना। (iii) नकद निधि अनुपात में परिवर्तन (Change in Cash Reserve Ratio) इससे अभिप्राय है कि केन्द्रीय बैंक के पास बैंकों को अपनी जमा राशियों का एक न्यूनतम भाग जमा करना पड़ता है। (वैधानिक तरल कोषानुपात में परिवर्तन (Change in statutory Liquidity Ratio) इसका अभिप्राय यह है कि बैंकों की अपनी जमा राशियों का एक निश्चित प्रतिशत नकदी के रूप में अनिवार्य रूप से स्वयं के पास रखना पड़ता है। (v) उपभोक्ता साख पर नियन्त्रण (Regulation of Consumer Credit) (vi) साख की राशनिंग।

(3) सरकारी बैंकर, एजेन्ट एवं सलाहकार—केन्द्रीय बैंक सरकार का बैंकर एजेण्ट और परामर्श दाता होता है। केन्द्रीय बैंक सरकार का बैंकर होने के नाते सरकार के कोषों का संरक्षण करता है तथा सरकार के सभी विभागों के खाते रखता है। सरकार के एजेण्ट के रूप में यह सरकार की ओर से विदेशी प्रतिभूति और मुद्राओं को खरीदता एवं बेचता बैंक हैं। आर्थिक तक सलाहकार के रूप में यह केन्द्रीय सरकार को वित्तीय परामर्श देता है।

(4) बैंकों का बैंक (Banker's Bank)—केन्द्रीय बैंक देश के अन्य बैंकों के बैंकर के रूप में भी कार्य करता है। इस बैंक के अन्य सभी बैंकों के साथ प्राय: वही सम्बन्ध होते हैं जोकि व्यापारिक बैंकों के उनके ग्राहकों के साथ होते हैं।

(5) समाशोधन गृह का कार्य (Clearing House Function)—केन्द्रीय बैंक के पास सभी बैंकों के खाते होते हैं और इन खातों में व्यापारिक बैंक नकद कोष रखते हैं। बैंकों द्वारा जारी किये गए चैकों का भुगतान केन्द्रीय बैंक द्वारा समाशोधन गृह से आसानी से किया जा सकता है।

(6) अन्तिम समय का ऋणदाता (Lender of the Last Resort)—अन्तिम समय का ऋणदाता शब्दों से अभिप्राय उस स्थिति में होता है जब व्यापारिक बैंक को अन्य किसी स्रोत से ऋण प्राप्त नहीं होता तो ऐसे में केन्द्रीय बैंक व्यापारिक बिलों की पुन:कटौती करके अथवा प्रतिभूतियों की जमानत पर ऋण प्रदान करता है।

(7) राष्ट्र के स्वर्ण तथा विदेशी विनिमय कोषों का संरक्षक (Custodian of Gold & Foreign Exchange Reserve)

(8) आंकड़े एकत्रित करना (Collection of Data)

(9) कृषि व औद्योगिक विकास के लिए साख व्यवस्था करना (Credit facilities for Agricultural and Industrial Development)

(10) आर्थिक स्थिरता स्थापित करना।

3. **औद्योगिक बैंक**—व्यापारिक बैंक प्राय: अल्पकालीन ऋण (Short Term Loan) देते हैं जबकि उद्योगों के लिए दीर्घकालीन अथवा मध्यकालीन (Long term or Medium term) ऋणों की आवश्यकता होती है। व्यापारिक बैंकों के पास जो रकमें जमा होती है वह प्राय: अल्पकाल के लिए होती है। अत: इन्हें दीर्घकाल के लिए उधार नहीं दिया जा सकता। इस कमी की पूर्ति के लिए विशेष प्रकार के औद्योगिक बैंकों की स्थापना की गई है। इन बैंकों की पूंजी प्राय: व्यापारिक बैंकों से अधिक होती है तथा इनके अंश प्राय: संस्थाओं को अधिक बेचे जाते हैं। भारत में भारतीय औद्योगिक वित्त निगम (Industrial Finance Corporation) औद्योगिक विकास बैंक (Industrial Development Bank) तथा औद्योगिक साख एवं विनियोग निगम (Industrial Credit and Investment Corporation of India) आदि औद्योगिक बैंकों के उदाहरण हैं।

4. **कृषि बैंक (Agriculture Bank)**—जापान, जर्मनी आदि देशों में कृषि विकास के लिए वित्त व्यवस्था करने वाले पृथक बैंक स्थापित किये गए हैं। यह बैंक खेती सम्बन्धी कार्यो–बीज, हल, बैल, सिंचाई आदि के लिए ऋण की व्यवस्था करते हैं और इन ऋणों पर रियायती ब्याज लेते हैं (Concessional rate of Interest)। भारत में कृषि सम्बन्धी कार्यो के लिए वित्तीय व्यवस्था करने की दृष्टि से सहकारी बैंक तथा भूमि विकास बैंक स्थापित किए गए हैं। इन बैंकों को केन्द्रीय बैंक तथा सरकार द्वारा आर्थिक सहयोग दिया जाता है।

5. **विदेशी विनिमय बैंक (Foreign Exchange Bank)**—विनिमय बैंक वे बैंक होते हैं जो विदेशी व्यापार को बढ़ाने के उद्देश्य से विदेशी मुद्रा में लेन–देन करते हैं। ये बैंक एक देश मुद्रा को दूसरे देश से बदलते हैं। विदेशी ड्राफ्ट तथा विदेशी विनिमय बिलों का लेन–देन करते हैं। ये आयात–निर्यात के लिए विदेशी मुद्राएं उधार देते हैं तथा अन्य साधारण बैंकिंग कार्य भी करते हैं। भारत में पाये जाने वाले विनिमय बैंक बहुधा विदेशी बैंक है जैसे कि लायड्स बैंक (Loyds Bank) ग्रिण्डलेज बैंक (Grindlays Bank) ओवरसीज बैंक ऑफ इण्डिया (Overseas Bank of India)।

6. **निर्यात-आयात बैंक (Export Import Bank)**—किसी भी देश में आर्थिक विकास में विदेशी व्यापार का विशेष महत्व होता है। वर्तमान में निर्यात वृद्धि के कारण निर्यात की साख सुविधाओं का महत्व बढ़ता जा रहा है। अत: निर्यातकों और आयातकों को साख–सुविधाएँ उपलब्ध कराने के लिए Exim Banks की स्थापना की गई है। अमेरिका और जापान के निर्यात–आयात बैंक इसके उदाहरण हैं।

(b) गैर-बैंकिंग संस्थाएं (Non-Banking Financial Institutions) :

भारत में गैर-बैंकिंग वित्तीय संस्थाओं का महत्व काफी बढ़ गया है व्यापारिक एवं सरकारी बैंकों को छोड़कर अन्य वित्तीय संस्थाओं को गैर-बैंकिंग वित्तीय मध्यस्थ कहा जाता था। जनता की बचतें इकट्ठा करती हैं और निवेशकर्ता को उधार देती हैं। इन कम्पनियों का रिजर्व बैंक के पास पंजीकरण होना आवश्यक है। इन मध्यस्थों और बैंकों में मुख्यत: यह अन्तर है कि ये लोगों की बचतों को एकत्रित करती हैं। किन्तु उनकी मांग जमाएँ (Demand Deposit) स्वीकार नहीं करती, यह चैक भी जारी नहीं करती और बैंकों के कई अन्य कार्य भी नहीं करती है। रिजर्व बैंक एक्ट 1934 जिसका 1994 में संशोधन किया गया उसके अनुसार इनका मुख्य कारोबार जमा राशि प्राप्त करने अथवा वित्तीय संस्थाओं की तरह ऋण देने प्रतिभूतियों में निवेश करने, किराया, खरीद वित्त (Hire Purchase Finance) अथवा पट्टे पर उपकरण (Equipment Leasing) देना है। भारत में गैर-बैंकिंग वित्तीय मध्यस्थ के रूप में विकास बैंक महत्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं।

(II) गैर-संस्थागत या असंगठित क्षेत्र

भारतीय बैंकिंग प्रणाली के असंगठित क्षेत्र के अन्तर्गत देशी बैंकों को शामिल किया जाता है। इस क्षेत्र को असंगठित इसलिए कहा जाता है क्योंकि इस पर रिजर्व बैंक का नियन्त्रण नहीं होता। इनको महाजन, साहूकार, सर्राफ आदि नाम से सम्बोधित किया जाता है। भारतीय बैंकिंग जांच समिति (Indian Banking Enquiry Committee) समिति के अनुसार (देशी बैंकर वह व्यक्ति या व्यक्तिगत फर्म है जो जमाएं स्वीकार करने, हुण्डियों में व्यवसाय करने और ऋण देने का कार्य करती हैं। देशी बैंकर भारत के कोने-कोने में पाये जाते हैं और कृषि व व्यापार के लिए वित्त की व्यवस्था करते हैं। भारतीय बैंकिंग कम्पनी अधिनियम ने इनको बैंक या बैंकर का दर्जा नहीं दिया है।

असंगठित क्षेत्र का मुख्य विपक्ष हुण्डी होता है। हुण्डी देशी विनिमय पत्र है जो सामान्यत: किसी देशी भाषा में लिखा जाता है, ये क्षेत्र किसानों, ग्रामीण कारीगरों, छोटे व्यापारियों तथा छोटे उत्पादकों की आवश्यकता को पूरा करता है क्योंकि बैंकिंग क्षेत्र उनकी आवश्यकता को पूरा करने के लिए अपर्याप्त होता है तथा उन्हें ऋण देने में भी जोखिम होती है। इनके अपने ग्राहकों से व्यक्तिगत सम्बन्ध होते हैं। ऋण देने का ढंग सरल होता है तथा आवश्यकता के समय पर्याप्त मात्रा में ऋण प्रदान करते हैं। इसमें कई दोष भी हैं जैसे दोषपूर्ण हिसाब-किताब व्यवस्था, धोखेबाजी, ऊंची ब्याज दर, अनुत्पादक ऋण, सट्टा व्यवसाय आदि। असंगठित क्षेत्र के उपरोक्त दोषो को देखकर ऐसा लगता है कि इनको तुरन्त समाप्त कर दिया जाए। परन्तु कुछ लोगों का मत है कि असंगठित क्षेत्र की समाप्ति की अपेक्षा उसकी कार्यप्रणाली में सुधार की आवश्यकता है। (Unorganised sector should not be ended but mended) इस क्षेत्र को अपनी कार्य प्रणाली आधुनिक ढंग से करनी चाहिए।

3.3 वित्तीय संस्थाओं की भारतीय वित्तीय प्रणाली में भूमिका (Role of Financial Institutions in Financial System of India)

वित्तीय संस्थाएं भारतीय वित्तीय प्रणाली की जीवन रक्त (Life Blood) है। वित्तीय संस्थाएं साधन एकत्रित करती है। व्यक्तियों तथा संस्थाओं से जमा स्वीकार करती है तथा उसे निवेशकर्त्ताओं को उधार देती है। ये वित्तीय पत्रों को खरीदती तथा बेचती है। ये वित्तीय परिसम्पत्तियों का व्यापार करती है तथा कई प्रकार की वित्तीय सेवायें प्रदान करती है। (Financial institutions are those organisations which

deal in financial resources. They collect resources by accepting deposits from individuals and institutions and lend them to investors. They buy and sell financial instruments. They deal in financial assets and render various financial resources. अन्य शब्दों में वित्तीय संस्थाएं (i) बचतों को प्रोत्साहन देकर (ii) बचतों को एकत्रित करके (iii) बचतों को विभिन्न प्रयोगों एवं प्रयोगकर्त्ताओं में आबंटित करके पूंजी निर्माण, उत्पादन तथा आर्थिक विकास का सहायता देती है। ये सभी कार्य वित्तीय संस्थाओं के महत्व को प्रकट करते हैं।

(1) **पूंजी निर्माण (Capital Formation)**—वित्तीय संस्थाएं लोगों द्वारा की गई बचतों को सक्रिय उद्यमियों को निवेश करने के लिए प्रदान करते हैं। इसमें कृषि, उद्योग, व्यापार का विकास होता है तथा पूंजी निर्माण को बढ़ावा मिलता है।

(2) **मुद्रा प्रणाली में लोच (Elasticity in Monetary System)**—मुद्रा की मांग बढ़ने पर बैंक अधिक साख प्रदान करते हैं और मुद्रा की मांग कम होने पर बैंक साख मुद्रा का संकुचन करते हैं। इस से मुद्रा प्रणाली में लोचशीलता बनी रहती है।

(3) **कीमत स्थिरता (Price Stability)**—कीमत वृद्धि के समय साख संकुचन द्वारा और कीमतों में कमी के दौरान साख विस्तार द्वारा कीमतों में स्थिरता लाई जा सकती है।

(4) **साख निर्माण (Credit Creation)**—यह बैंकिंग प्रणाली का एक करिश्मा है कि बैंकों के पास वित्तीय संस्थाओं के पास जितनी नकद जमा होती है उससे कई गुना अधिक उधार देकर देश में उत्पादन व रोजगार को बढ़ावा देते हैं।

(5) **बहूमूल्य वस्तुओं की सुरक्षा (Safe Custody of Valueables) :** बैंक अपने ग्राहकों की बहुमूल्य वस्तुएँ सोना, चाँदी, जेवर, कीमती दस्तावेजों आदि को अपने पास सुरक्षित रखने के लिए लॉकर्स की सुविधा प्रदान करते हैं।

(6) **मुद्रा प्रेषण (Remittances)**—वित्तीय संस्थाएं (बैंकिंग संस्थाएं) रुपये को एक स्थान से दूसरे स्थान तक बैंक ड्राफ्ट (Bank Draft) द्वारा कम खर्च पर सुरक्षित पहुंचाने का कार्य करते है।

(7) **अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार को बढ़ावा (Increase in International Trade)**—विनिमय बैंक देशी मुद्रा को विदेशी मुद्रा में बदलकर और विदेशी मुद्रा को देशी मुद्रा में बदलकर तथा कई अन्य प्रकार से विदेशी व्यापार को प्रोत्साहित करते हैं।

(8) **बचतों का एकत्रीकरण (Mobilization of Savings)**—वित्तीय परिसम्पत्तियों को दो श्रेणियों में विभाजित किया जाता है। (a) प्राथमिक प्रतिभूतियों (Primary Securities) जैसे शेयर, बॉण्ड, डिबेचर, कम्पनी, जमाएं आदि। द्वितीयक प्रतिभूतियां (Secondary Securities) वित्तीय संस्थाओं द्वारा जारी की जाती है। जैसे बैंक, बीमा कम्पनियाँ जब जनता प्राथमिक प्रतिभूतियों को खरीदने के लिए अपनी बचतों का प्रयोग करती है। यह निवेशकर्त्ताओं के लिए अपनी बचतें प्रत्यक्ष रूप से उपलब्ध कर देते है। जब जनता द्वितीयक प्रतिभूतियां खरीदती है, यह अपनी बचतों को वित्तीय संस्थाओं को सौंप देती हैं जो आगे इनकी प्रतियोगी निवेशकर्त्ताओं में आबंटित करती हैं।

(9) कोषों को आबंटन (Allecation of Fund)—वित्तीय संस्थाओं की आबंटनात्मक भूमिका महत्वपूर्ण है केवल संयुक्त पूंजी कम्पनियां या निगमें ही, शेयर और डिबेचर जारी करके, बाजार से प्रत्यक्ष रूप से कोष इकट्ठा कर सकती है। परन्तु गैर-निगम उधारकर्त्ता जैसे एक उद्यम, सांझेदारी फर्में बाजार से प्रत्यक्ष रूप से कोष इकट्ठा नहीं कर सकते। कोषों के लिए बाजार में, कोषों की मांग उनकी पूर्ति से बढ़ जाती है। इसके फलस्वरूप साख का राशनिंग कर दिया जाता है। वित्तीय संस्थाएं विभिन्न प्रतियोगी निवेशकर्त्ताओं के बीच कोषों के आबंटन के ढंग को निर्धारित करती है।

(10) आर्थिक विकास की प्रक्रिया में सहायक (Help in the Process of Economy Development)—आर्थिक विकास उत्पादन में वृद्धि द्वारा प्रतिबिंबित होता है। उत्पादन के लिए विभिन्न प्रकार और मात्रा में पूंजी की आवश्यकता होती है। (i) प्लान्ट, भूमि व भवन में निवेश करने के लिए दीर्घकालीन पूंजी (ii) औजार और साज-सज्जा को खरीदने के लिए मध्यमकालीन पूंजी (iii) व्यापार के प्रचलन को वित्त प्रदान करने के लिए अल्पकालीन पूंजी। इस पूंजी के प्रबन्ध के लिए फर्मों को वित्तीय संस्थाओं पर निर्भर रहना पड़ता है।

इस प्रकार आधुनिक अर्थव्यवस्था में वित्तीय संस्थाएं काफी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, इसलिए आजकल इन्हें धमनी केन्द्र (Nerve System) केन्द्र कहा जाता है।

4. सारांश (Summary)

इस पाठ का अध्ययन करने के बाद यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि भारतीय वित्तीय प्रणाली में कई परिवर्तन हो चुके हैं। देश में औद्योगिक विकास तेजी से हो रहा है। जिससे उनकी कोषों की बढ़ती मांग को पूरा करने हेतु भारतीय वित्त संस्थाओं का ढांचा सुदृढ़ किया जा रहा है। उदारीकरण और विश्वीकरण के बाद तो भारतीय वित्तीय प्रणाली तेजी से परिवर्तित हुई है और कोषों की बढ़ती मांग की पूर्ति हेतु सार्वजनिक एवं निजी दोनों क्षेत्रों की वित्तीय संस्थाओं ने कई वित्तीय प्रपत्र अथवा प्रतिभूतियाँ निर्गमित की हैं। देश के आर्थिक विकास में ओर तेजी लाने के लिए भारतीय वित्तीय प्रणाली का ओर अधिक प्रभावी एवं सुदृढ़ करने की आवश्यकता है।

5. प्रस्तावित पुस्तकें (Suggested Readings)

1. भारतीय वित्तीय प्रणाली—कुलदीप गुप्ता एवं डॉ. राजकुमार
2. भारतीय वित्तीय प्रणाली—टी.आर. जैन एवं ओ. पी. खन्ना

6. नमूने के प्रश्न (Self Assessment Questions)

1. भारतीय वित्तीय प्रणाली से क्या अभिप्राय है ? इसके मुख्य अंगों का वर्णन कीजिए।
(What is meant by Indian Financial System ? Explain its main Components.)

2. पूंजी बाजार क्या है ? इसके विभिन्न अंगों की संक्षेप में व्याख्या करें।
(What is Capital Market ? Describe in brief its various constituents.)

3. वित्तीय परिसम्पत्तियां,वित्तीय बाजार तथा वित्तीय मध्यस्थों का वर्णन करें।
(What is meant by financial assets, financial markets and financial intermediaries?)

4. भारत के आर्थिक विकास में भारतीय वित्त प्रणाली के योगदान का वर्णन करें।
(Discuss the role of Indian financial system in the economic development of the country.)